205 MA HIN

by Cde Anu

Submission date: 26-Jul-2025 01:17PM (UTC+0530)
Submission ID: 2720717110
File name: 205_M.A._HINDI-_DIN.pdf (10.47M)
Word count: 44197
Character count: 109010

विशेष अध्ययन : दिनकर

एम.ए., हिन्दी Semester-II, Paper-V

पाठ लेखक

डॉ. पिराजीसेनकांबळे मनोहर
एम.ए., एम, फिल., पी-एच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय

डॉ. सूर्य कुमारी .पी.
एम.ए., एम, फिल., पी-एच.डी.
हिन्दी विभाग
हैदराबाद विश्वविद्यालय

डॉ आनंदी
एम.ए., एम, फिल., पी-एच.डी
सेंटीमैरी जूनियर कॉलेज
हैदराबाद

पाठ लेखक और संपादक

डॉ. मंजुला
एम.ए., एम, फिल., पी-एच.डी.
हिन्दी विभाग
रामकृष्ण हिंदू हाई स्कूल
अमरावती, गुंटूर।

निर्देशक

डॉ नागराजूबट्टू
एम.एच.आर.एम., एम.बी.ए., एल.एल.बी., एम.ए., (मनो) एम.ए., (सामा) एम.ई.डी., एम.फिल., पी-एच.डी
दूरस्थ शिक्षा केंद्र, आचार्य नागार्जुना विश्वविद्यालय
नागार्जुना नगर-522510
Phone No-0863-2346208, 0863-2346222
0863-2346259 (अध्ययन सामग्री)
Website: www.anucde.info
E-mail: anucdesemester2021@gmail.com

एम.ए., हिन्दी

First Edition: 2021
Reprint :

No. of Copies:

©Acharya Nagarjuna University

This book is exclusively prepared for the use of students of एम.ए., हिन्दी Centre for Distance Education, Acharya Nagarjuna University and this book is meant for limited circulation only.

Published by:

Dr. NAGARAJU BATTU,
Director

Centre for Distance Education,
Acharya Nagarjuna University

Printed at:

FOREWORD

Since its establishment in 1976, Acharya Nagarjuna University has been forging ahead in the path of progress and dynamism, offering a variety of courses and research contributions. I am extremely happy that by gaining 'A' grade from the NAAC in the year 2016, Acharya Nagarjuna University is offering educational opportunities at the UG, PG levels apart from research degrees to students from over 443 affiliated colleges spread over the two districts of Guntur and Prakasam.

The University has also started the Centre for Distance Education in 2003-04 with the aim of taking higher education to the door step of all the sectors of the society. The centre will be a great help to those who cannot join in colleges, those who cannot afford the exorbitant fees as regular students, and even to housewives desirous of pursuing higher studies. Acharya Nagarjuna University has started offering B.A., and B.Com courses at the Degree level and M.A., M.Com., M.Sc., M.B.A., and L.L.M., courses at the PG level from the academic year 2003-2004 onwards.

To facilitate easier understanding by students studying through the distance mode, these self-instruction materials have been prepared by eminent and experienced teachers. The lessons have been drafted with great care and expertise in the stipulated time by these teachers. Constructive ideas and scholarly suggestions are welcome from students and teachers involved respectively. Such ideas will be incorporated for the greater efficacy of this distance mode of education. For clarification of doubts and feedback, weekly classes and contact classes will be arranged at the UG and PG levels respectively.

It is my aim that students getting higher education through the Centre for Distance Education should improve their qualification, have better employment opportunities and in turn be part of country's progress. It is my fond desire that in the years to come, the Centre for Distance Education will go from strength to strength in the form of new courses and by catering to larger number of people. My congratulations to all the Directors, Academic Coordinators, Editors and Lesson-writers of the Centre who have helped in these endeavors.

Prof. P. Raja Sekhar
Vice-Chancellor
Acharya Nagarjuna University

SEMESTER II

PAPER - V : SPECIAL STUDY OF AN AUTHOR

DINAKAR

205HN21 - विशेष अध्ययन : दिनकर

पाठ्य पुस्तकें :

1. अ. हुँकार ।
   आ. कुरूक्षेत्र - (6,7, सर्ग मात्र) ।
   इ. रश्मिरथी - चौथा सर्ग मात्र ।
   ई. ऊर्वशी - (तीसरा सर्ग मात्र) ।
1. दिनकर के काव्यों का विस्तृत अंध्ययन : हुँकार

वस्तु और विचार के स्वरूप का विवेचन, विद्रोही चेतना, शिल्प योजना, भक्ति संरचना, निष्कर्ष ।

2. आधुनिक हिन्दी कविता का परिवेश और दिनकर की साहित्य साधना : एक विहंगावलोकन, रचनाशीलता ।

सहायक ग्रन्थ :

1. युगचरण दिनकर - डॉ. सावित्री सिन्हा ।
2. दिनकर : वैचारिक क्रान्ति के परिवेश में - डॉ. पी. आदेश्वर राव ।
3. दिनकर की कविता में विचार-तत्व : डॉ. एस. शेषारत्नम ।
4. ऊर्वशी : संवेदना एवं शिल्प : डॉ. वचनदेव कुमार बालेन्दु शेखर तिवारी ।

विषय

नुक्रमनिका	पृष्ठ संख्या
1. रामधारी सिंह दिनकर का परिचय	1.1- 1.14
2. हूँकार	2.1- 2.23
3. कुरुक्षेत्र - छठवाँ सर्ग	3.1- 3.25
4. कुरुक्षेत्र 7 वा सर्ग	4.1- 4.28
5. रश्मिरथी	5.1- 5.15
6. उर्वशी (तीसरा सर्ग)	6.1- 6.20

1. रामधारी सिंह दिनकर का परिचय

उद्देश्य :

1. एक **प्रगतिवादी** और मानववादी **कवि** के रूप में उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को ओजस्वी और प्रखर शब्दों का तानाबाना दिया। उनकी महान रचनाओं में रश्मिरथी और परशुराम की प्रतीक्षा शामिल है। उर्वशी को छोड़कर **दिनकर** की अधिकतर रचनाएँ वीर रस से ओतप्रोत है।
2. उन्होंने सामाजिक और आर्थिक समानता और शोषण के खिलाफ कविताओं की रचना की।

   आधुनिक काल के कविवर दिनकर का विधान के बारे में समझ सकेंगे ।
3. राष्ट्रकवि **दिनकर'** आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं। उनको राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत, क्रांतिपूर्ण संघर्ष की प्रेरणा देने वाली ओजस्वी कविताओं के कारण असीम लोकप्रियता मिली। **दिनकर** जी ने इतिहास, दर्शनशास्त्र और राजनीति विज्ञान की पढ़ाई के बारे में बताया गया था ।
4. रामधारी सिंह दिनकर साहित्य के वह सशक्त हस्ताक्षर हैं जिनकी कलम में दिनकर यानी सूर्य के समान चमक थी। उनकी कविताएं सिर्फ़ उनके समय का सूरज नहीं हैं बल्कि उसकी रौशनी से पीढ़ियां प्रकाशमान होती हैं। पढ़ें उनकी लिखी कविताओं में से वीर रस, प्रेरणा देने वाली हैं।

आधुनिक काल के कविवर दिनकर का विधान :

1.1 रामधारी सिंह दिनकर का जीवन - परिचय
1.2 जीवन काल
1.3 प्रमुख कृतियाँ
1.4 रामधारी सिंह दिनकर का साहित्यिक परिचय
1.5 रामधारी सिंह दिनकर की भाषा शैली
1.6 दिनकर जी के बारे में अन्य लेखकों के कथन
1.7 पुरस्कार/सम्मान , तथ्य

1.1 रामधारी सिंह दिनकर का जीवन – परिचय

उपनाम :'दिनकर'

मूल नाम :रामधारी सिंह दिनकर

जन्म :23 सितंबर 1908 | सिमरिया, बिहार

निधन :24 अप्रैल 1974 | चेन्नई, तामिलनाडु

रामधारी सिंह दिनकर एक भारतीय हिंदी कवि, निबंधकार, पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी थे. रामधारी सिंह दिनकर जी को सबसे प्रमुख हिंदी कवियों में से एक के रूप में याद किया जाता है. उन्हें 'वीर रास' का सबसे महान हिंदी कवि माना जाता है. आजादी से पहले लिखी गई उनकी राष्ट्रवादी कविताओं ने उन्हें 'राष्ट्रीय कवि' की पहचान दिलाई थी।

दिनकर ने शुरू में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान क्रांतिकारी आंदोलन का समर्थन किया, लेकिन बाद में वह गांधीवादी बन गए. हालाँकि, वे खुद को "बुरा गांधीवादी" कहते थे क्योंकि उन्होंने युवाओं में आक्रोश और बदले की भावनाओं का समर्थन किया था।

ओज, विद्रोह, आक्रोश के साथ ही कोमल शृंगारिक भावनाओं के कवि दिनकर की काव्य-यात्रा की शुरुआत हाई स्कूल के दिनों से हुई जब उन्होंने रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा प्रकाशित 'युवक' पत्र में 'अमिताभ' नाम से अपनी रचनाएँ भेजनी शुरू की। 1928 में प्रकाशित 'बारदोली-विजय' संदेश उनका पहला काव्य-संग्रह था। उन्होंने मुक्तक-काव्य और प्रबंध-काव्य—दोनों की रचना की। मुक्तक-काव्यों में कुछ गीति-काव्य भी हैं। कविताओं के अलावे उन्होंने निबंध, संस्मरण, आलोचना, डायरी, इतिहास आदि के रूप में विपुल गद्य लेखन भी किया। हिन्दी के एक प्रमुख लेखक, कवि व निबन्धकार थे। वे आधुनिक युग के श्रेष्ठ वीर रस के कवि के रूप में स्थापित हैं।

'दिनकर' स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के नाम से जाने गये। वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों का चरम उत्कर्ष हमें उनकी कुरुक्षेत्र और उर्वशी नामक कृतियों में मिलता है।

1.2 जीवन काल :

'दिनकर' जी का जन्म 24 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में हुआ था। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से इतिहास राजनीति विज्ञान में बीए किया। उन्होंने संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू का गहन अध्ययन किया था। बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे एक विद्यालय में अध्यापक हो गये। १९३४ से १९४७ तक बिहार सरकार की सेवा में सब-रजिस्टार और प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। १९५० से १९५२ तक लंगट सिंह कालेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी के विभागाध्यक्ष रहे, भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद पर 1963 से 1965 के बीच कार्य किया और उसके बाद भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार बने।

उन्हें पद्म विभूषण की उपाधि से भी अलंकृत किया गया। उनकी पुस्तक ***संस्कृति के चार अध्याय*** के लिये साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा उर्वशी के लिये भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया। अपनी लेखनी के माध्यम से वह सदा अमर रहेंगे।

द्वापर युग की ऐतिहासिक घटना महाभारत पर आधारित उनके प्रबन्ध काव्य कुरुक्षेत्र को विश्व के 100 सर्वश्रेष्ठ काव्यों में ७४वाँ स्थान दिया गया।

1947 में देश स्वाधीन हुआ और वह बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रध्यापक व विभागाध्यक्ष नियुक्त होकर मुज़फ़्फ़रपुर पहुँचे। 1952 में जब भारत की प्रथम संसद का निर्माण हुआ, तो उन्हें राज्यसभा का सदस्य चुना गया और वह दिल्ली आ गए। दिनकर 12 वर्ष तक संसद-सदस्य रहे, बाद में उन्हें सन 1964 से 1965 ई. तक भागलपुर विश्वविद्यालय का कुलपति नियुक्त किया गया। लेकिन अगले ही वर्ष भारत सरकार ने उन्हें 1965 से 1971 ई. तक अपना हिन्दी सलाहकार नियुक्त किया और वह फिर दिल्ली लौट आए। फिर तो ज्वार उमरा और रेणुका, हुंकार, रसवंती और द्वंद्वगीत रचे गए। रेणुका और हुंकार की कुछ रचनाऐं यहाँ-वहाँ प्रकाश में आईं और अंग्रेज़ प्रशासकों को समझते देर न लगी कि वे एक ग़लत आदमी को अपने तंत्र का अंग बना बैठे हैं और दिनकर की फ़ाइल तैयार होने लगी, बात-बात पर क़ैफ़ियत तलब होती और चेतावनियाँ मिला करतीं। चार वर्ष में बाईस बार उनका तबादला किया गया।

रामधारी सिंह दिनकर स्वभाव से सौम्य और मृदुभाषी थे, लेकिन जब बात देश के हित-अहित की आती थी तो वह बेबाक टिप्पणी करने से कतराते नहीं थे। रामधारी सिंह दिनकर ने ये तीन पंक्तियां पंडित जवाहरलाल नेहरू के खिलाफ संसद में सुनाई थी, जिससे देश में भूचाल मच गया था। दिलचस्प बात यह है कि राज्यसभा सदस्य के तौर पर दिनकर का चुनाव पंडित नेहरु ने ही किया था, इसके बावजूद नेहरू की नीतियों की मुखालफत करने से वे नहीं चूके।

देखने में देवता सदृश्य लगता है
बंद कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है।
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा हो
समझो उसी ने हमें मारा है॥

1962 में चीन से हार के बाद संसद में दिनकर ने इस कविता का पाठ किया जिससे तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू का सिर झुक गया था. यह घटना आज भी भारतीय राजनीती के इतिहास की चुनिंदा क्रांतिकारी घटनाओं में से एक है-

रे रोक युद्धिष्ठिर को न यहां जाने दे उनको स्वर्गधीर
फिरा दे हमें गांडीव गदा लौटा दे अर्जुन भीम वीर॥

इसी प्रकार एक बार तो उन्होंने भरी राज्यसभा में नेहरू की ओर इशारा करते हुए कहा- "क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया है, ताकि सोलह करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाए जा सकें?" यह सुनकर नेहरू सहित सभा में बैठे सभी लोगसन्न रह गए थे। किस्सा 20 जून 1962 का है। उस दिन दिनकर राज्यसभा में खड़े हुए और हिंदी के अपमान को लेकर बहुत सख्त स्वर में बोले। उन्होंने कहा-

देश में जब भी हिंदी को लेकर कोई बात होती है, तो देश के नेतागण ही नहीं बल्कि कथित बुद्धिजीवी भी हिंदी वालों को अपशब्द कहे बिना आगे नहीं बढ़ते। पता नहीं इस परिपाटी का आरम्भ किसने किया है, लेकिन मेरा ख्याल है कि इस परिपाटी को प्रेरणा प्रधानमंत्री से मिली है। पता नहीं, तेरह भाषाओं की क्या किस्मत है कि प्रधानमंत्री ने उनके बारे में कभी कुछ नहीं कहा, किन्तु हिंदी के बारे में उन्होंने आज तक कोई अच्छी बात नहीं कही। मैं और मेरा देश पूछना चाहते हैं कि क्या आपने हिंदी को राष्ट्रभाषा इसलिए बनाया था ताकि सोलह

करोड़ हिंदीभाषियों को रोज अपशब्द सुनाएं? क्या आपको पता भी है कि इसका दुष्परिणाम कितना भयावह होगा?

यह सुनकर पूरी सभा सन्न रह गई। ठसाठस भरी सभा में भी गहरा सन्नाटा छा गया। यह मुर्दा-चुप्पी तोड़ते हुए दिनकर ने फिर कहा- 'मैं इस सभा और खासकर प्रधानमंत्री नेहरू से कहना चाहता हूं कि हिंदी की निंदा करना बंद किया जाए। हिंदी की निंदा से इस देश की आत्मा को गहरी चोट पहुँचती है।'

1.3 प्रमुख कृतियाँ :

उन्होंने सामाजिक और आर्थिक समानता और शोषण के खिलाफ कविताओं की रचना की। एक प्रगतिवादी और मानववादी कवि के रूप में उन्होंने ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं को ओजस्वी और प्रखर शब्दों का तानाबाना दिया। उनकी महान रचनाओं में रश्मिरथी और परशुराम की प्रतीक्षा शामिल है। उर्वशी को छोड़कर दिनकर की अधिकतर रचनाएँ वीर रस से ओतप्रोत है। भूषण के बाद उन्हें वीर रस का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है।

ज्ञानपीठ से सम्मानित उनकी रचना उर्वशी की कहानी मानवीय प्रेम, वासना और सम्बन्धों के इर्द-गिर्द घूमती है। उर्वशी स्वर्ग परित्यक्ता एक अप्सरा की कहानी है। वहीं, कुरुक्षेत्र, महाभारत के शान्ति-पर्व का कवितारूप है। यह दूसरे विश्वयुद्ध के बाद लिखी गयी रचना है। वहीं सामधेनी की रचना कवि के सामाजिक चिन्तन के अनुरुप हुई है। संस्कृति के चार अध्याय में दिनकरजी ने कहा कि सांस्कृतिक, भाषाई और क्षेत्रीय विविधताओं के बावजूद भारत एक देश है। क्योंकि सारी विविधताओं के बाद भी, हमारी सोच एक जैसी है।

विस्तृत दिनकर साहित्य सूची नीचे दी गयी है-

उनकी कृतियाँ अधिकतर वीर रस की हैं, हालाँकि उर्वशी इसका अपवाद हैं. उनकी कुछ महान कृतियाँ रश्मिरथी और परशुराम की प्रतीक्षा हैं. उन्हें भूषण के बाद से 'वीर रस' के सबसे महान हिंदी कवि के रूप में जाना जाता है।

रामधारी सिंह दिनकर की कविता संग्रह

- रेणुका / रामधारी सिंह "दिनकर" (1935)
- हुंकार / रामधारी सिंह "दिनकर" (1938)
- रसवन्ती / रामधारी सिंह "दिनकर" (1939)
- द्वन्द्वगीत / रामधारी सिंह "दिनकर" (1940)
- कुरुक्षेत्र / रामधारी सिंह "दिनकर" (1946)

- धूपछाँह / रामधारी सिंह “दिनकर” (1946)
- सामधेनी / रामधारी सिंह “दिनकर” (1947)
- बापू / रामधारी सिंह “दिनकर” (1947)
- इतिहास के आँसू / रामधारी सिंह “दिनकर” (1951)
- धूप और धुआँ / रामधारी सिंह “दिनकर” (1951)
- रश्मिरथी / रामधारी सिंह “दिनकर” (1954)
- नीम के पत्ते / रामधारी सिंह “दिनकर” (1954)
- दिल्ली / रामधारी सिंह “दिनकर” (1954)
- नील कुसुम / रामधारी सिंह “दिनकर” (1955)
- नये सुभाषित / रामधारी सिंह “दिनकर” (1957)
- सीपी और शंख / रामधारी सिंह “दिनकर” (1957)
- परशुराम की प्रतीक्षा / रामधारी सिंह “दिनकर” (1963)
- हारे को हरि नाम / रामधारी सिंह “दिनकर” (1970)
- प्रणभंग / रामधारी सिंह “दिनकर” (1929)
- सूरज का ब्याह / रामधारी सिंह “दिनकर” (1955)
- कविश्री / रामधारी सिंह “दिनकर” (1957)
- कोयला और कवित्व / रामधारी सिंह “दिनकर” (1964)
- मृत्तितिलक / रामधारी सिंह “दिनकर” (1964)

अनुवाद

- आत्मा की आँखें / डी० एच० लारेंस (1964)

खण्डकाव्य

- उर्वशी / रामधारी सिंह “दिनकर” (1961)
- चुनी हुई रचनाओं के संग्रह
- चक्रवाल / रामधारी सिंह “दिनकर” (1956)
- सपनों का धुआँ / रामधारी सिंह “दिनकर”
- रश्मिमाला / रामधारी सिंह “दिनकर”
- भग्न वीणा / रामधारी सिंह “दिनकर”
- समर निंद्य है / रामधारी सिंह “दिनकर”
- समानांतर / रामधारी सिंह “दिनकर”
- अमृत-मंथन / रामधारी सिंह “दिनकर”
- लोकप्रिय दिनकर / रामधारी सिंह “दिनकर” (1960)

- दिनकर की सूक्तियाँ / रामधारी सिंह “दिनकर” (1964)
- दिनकर के गीत / रामधारी सिंह “दिनकर” (1973)
- संचयिता / रामधारी सिंह “दिनकर” (1973)
- रश्मिलोक / रामधारी सिंह “दिनकर” (1974)

रामधारी सिंह दिनकर की बाल कविताएं

- चांद का कुर्ता / रामधारी सिंह “दिनकर”
- नमन करूँ मैं / रामधारी सिंह “दिनकर”
- सूरज का ब्याह (कविता) / रामधारी सिंह “दिनकर”
- चूहे की दिल्ली-यात्रा / रामधारी सिंह “दिनकर”
- मिर्च का मज़ा / रामधारी सिंह “दिनकर”

प्रतिनिधि रचनाएँ

- दूध-दूध! / रामधारी सिंह “दिनकर”
- सिंहासन खाली करो कि जनता आती है / रामधारी सिंह “दिनकर”
- जीना हो तो मरने से नहीं डरो रे / रामधारी सिंह “दिनकर”
- परंपरा / रामधारी सिंह “दिनकर”
- परिचय / रामधारी सिंह “दिनकर”
- दिल्ली (कविता) / रामधारी सिंह “दिनकर”
- झील / रामधारी सिंह “दिनकर”
- वातायन / रामधारी सिंह “दिनकर”
- समुद्र का पानी / रामधारी सिंह “दिनकर”
- कृष्ण की चेतावनी / रामधारी सिंह “दिनकर”
- ध्वज-वंदना / रामधारी सिंह “दिनकर”
- आग की भीख / रामधारी सिंह “दिनकर”
- बालिका से वधू / रामधारी सिंह “दिनकर”
- जियो जियो अय हिन्दुस्तान / रामधारी सिंह “दिनकर”
- कुंजी / रामधारी सिंह “दिनकर”
- मनुष्य और सर्प / रश्मिरथी / रामधारी सिंह “दिनकर”
- परदेशी / रामधारी सिंह “दिनकर”
- एक पत्र / रामधारी सिंह “दिनकर”
- एक विलुप्त कविता / रामधारी सिंह “दिनकर”
- गाँधी / रामधारी सिंह “दिनकर”

- आशा का दीपक / रामधारी सिंह “दिनकर”
- कलम, आज उनकी जय बोल / रामधारी सिंह “दिनकर”
- शक्ति और क्षमा / रामधारी सिंह “दिनकर”
- हो कहाँ अग्निधर्मा नवीन ऋषियों / रामधारी सिंह “दिनकर”
- गीत-अगीत / रामधारी सिंह “दिनकर”
- लेन-देन / रामधारी सिंह “दिनकर”
- निराशावादी / रामधारी सिंह “दिनकर”
- रात यों कहने लगा मुझसे गगन का चाँद / रामधारी सिंह “दिनकर”
- लोहे के मर्द / रामधारी सिंह “दिनकर”
- विजयी के सदृश जियो रे / रामधारी सिंह “दिनकर”
- समर शेष है / रामधारी सिंह “दिनकर”
- पढ़क्कू की सूझ / रामधारी सिंह “दिनकर”
- वीर / रामधारी सिंह “दिनकर”
- मनुष्यता / रामधारी सिंह “दिनकर”
- पर्वतारोही / रामधारी सिंह “दिनकर”
- करघा / रामधारी सिंह “दिनकर”
- चांद एक दिन / रामधारी सिंह “दिनकर”
- भारत / रामधारी सिंह “दिनकर”
- भगवान के डाकिए / रामधारी सिंह “दिनकर”
- जनतन्त्र का जन्म / रामधारी सिंह “दिनकर”
- शोक की संतान / रामधारी सिंह “दिनकर”
- जब आग लगे… / रामधारी सिंह “दिनकर”
- पक्षी और बादल / रामधारी सिंह “दिनकर”
- राजा वसन्त वर्षा ऋतुओं की रानी / रामधारी सिंह “दिनकर”
- मेरे नगपति! मेरे विशाल! / रामधारी सिंह “दिनकर”
- लोहे के पेड़ हरे होंगे / रामधारी सिंह “दिनकर”
- सिपाही / रामधारी सिंह “दिनकर”
- रोटी और स्वाधीनता / रामधारी सिंह “दिनकर”
- अवकाश वाली सभ्यता / रामधारी सिंह “दिनकर”
- व्याल-विजय / रामधारी सिंह “दिनकर”
- माध्यम / रामधारी सिंह “दिनकर”

- स्वर्ग / रामधारी सिंह "दिनकर"
- कलम या कि तलवार / रामधारी सिंह "दिनकर"
- हमारे कृषक / रामधारी सिंह "दिनकर"

रामधारी सिंह दिनकर की आलोचना

साहित्यिक आलोचना

- साहित्य और समाज, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- चिंतन के आयम, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- कवि और कविता, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- संस्कृति भाषा और राष्ट्र, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- कविता और शुद्ध कविता, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

जीवनी {Biographies}

- श्री अरबिंदो: मेरी दृष्टि में, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- पंडित नेहरू और अन्य महापुरुष, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- स्मरणंजलि, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
- दिनकरनामा, डॉ दिवाकर, 2008

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा था "दिनकरजी अहिंदीभाषियों के बीच हिन्दी के सभी कवियों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय थे और अपनी मातृभाषा से प्रेम करने वालों के प्रतीक थे।" हरिवंश राय बच्चन ने कहा था "दिनकरजी को एक नहीं, बल्कि गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी-सेवा के लिये अलग-अलग चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने चाहिये।" रामवृक्ष बेनीपुरी ने कहा था "दिनकरजी ने देश में क्रान्तिकारी आन्दोलन को स्वर दिया।" नामवर सिंह ने कहा है "दिनकरजी अपने युग के सचमुच सूर्य थे।" प्रसिद्ध साहित्यकार राजेन्द्र यादव ने कहा था कि दिनकरजी की रचनाओं ने उन्हें बहुत प्रेरित किया। प्रसिद्ध रचनाकार काशीनाथ सिंह के अनुसार 'दिनकरजी राष्ट्रवादी और साम्राज्य-विरोधी कवि थे।'

रामधारी सिंह दिनकर को 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार से और काव्य-कृति 'उर्वशी' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्म भूषण' से अलंकृत किया। उनकी स्मृति में भारत सरकार द्वारा डाक-टिकट भी जारी किया गया।

रामधारी सिंह दिनकर का परिवार

पिता का नाम	बाबू रवि सिंह
माता का नाम	मनरूप देवी
भाई–बहन	केदारनाथ सिंह & रामसेवक सिंह
रामधारी सिंह दिनकर की पत्नी का नाम	ज्ञात नहीं

1.4 रामधारी सिंह दिनकर का साहित्यिक परिचय :

दिनकर जी के रचनाओं की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी परिवर्तनकारी सोच रही है। इन्होंने कविताएँ छायावाद से लिखना शुरू किया और नयी कविता जैसे युगों से होकर गुजरी।

उनकी कविता उवभव छायावाद युग में हुआ और वह प्रगतिवाद, प्रयोगवाद नयी कविता आदि के युगों से होकर गुजरा। दिनकर जी राष्ट्रवाद भावनाओं के ओजस्वी गायक रहे है।

प्रतिनिधि दिनकर जी मण्डलो में रहकर विदेशी यात्राएँ की ! गद्य के क्षेत्र में भी इन्होंने भारतीय संस्कृत दर्शन व आलोचना आदि ग्रन्थों प्रदान किया। इनकी काव्यकृति ‘उर्वशी, के लिए इन्हें ज्ञानपीठ पुरुस्कार से सम्मानित किया गया। तथा भारत सरकार द्वारा इन्हे ‘पद्म विभूषण’ दिया गया।

रेणुका इनकी सुप्रसिद्ध रचना है । सन् 1962 में भागलपुर विश्वविद्यालयं में इन्हें डी० लिट् की उपाधि प्रदान मिला।

रामधारी सिंह दिनकर बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति तथा बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर रहे।

वास्तव में ‘दिनकर’ जी सुप्त चेतना को जागृत करने वाले ओजस्वी कलाकार हैं। वे समाज में आमूल क्रान्ति ला संस्कृति के चार अध्याय गद्य ग्रन्थ पर इन्हें साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया। ‘दिनकर’ जी का गद्य साहित्य भी इनके काव्य की ही भाँति सजीव तथा जागरूकता से पूर्ण है। ना चाहते हैं। अपने समय के हिन्दी कवियों में ‘दिनकर’ जी सबसे महान राष्ट्रवादी कवि हैं।

1.5 रामधारी सिंह दिनकर की भाषा शैली :

भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इन्होंने अधिकतर आधुनिक छन्दों का प्रयोग किया है। इनकी **शैली** ओजपूर्ण प्रबन्ध **शैली** है, जिसके माध्यम से इन्होंने पूँजीवाद के प्रति विरोध तथा राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त किया है।

इनके काव्य में सभी रसों का समावेश है पर वीर रस की प्रधानता है। चित्रण भावपूर्ण तथा कविता का एक-एक शब्द आकर्षक होता है।

इनकी रचनाएँ खड़ीबोली में हैं। भाषा संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इन्होंने अधिकतर आधुनिक छन्दों का प्रयोग किया है।

इनकी शैली ओजपूर्ण प्रबन्ध शैली है, जिसके माध्यम से इन्होंने पूँजीवाद के प्रति विरोध तथा राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त किया है।

1.6 दिनकर जी के बारे में अन्य लेखकों के कथन:

हरिवंश राय बच्चन ने कहा था कि, "दिनकरजी को एक नहीं, बल्कि गद्य, पद्य, भाषा और हिन्दी-सेवा के लिये अलग-अलग चार ज्ञानपीठ पुरस्कार दिये जाने चाहिये."

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि दिनकर उन लोगों में बहुत लोकप्रिय थे जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी और वे अपनी मातृभाषा के प्रति प्रेम के प्रतीक थे।

हिंदी के जाने-माने लेखक काशीनाथ सिंह ने कहा है कि वे साम्राज्यवाद-विरोधी और राष्ट्रवाद के कवि थे।

रामबृक्ष बेनीपुरी ने लिखा कि दिनकर देश में क्रांतिकारी आंदोलन को आवाज दे रहे हैं. नामवर सिंह ने लिखा कि वह वास्तव में अपने युग के सूर्य थे। मशहूर कवि प्रेम जनमेजय के अनुसार दिनकर जी ने गुलाम भारत और आजाद भारत दोनों में अपनी कविताओं के जरिये क्रांतिकारी विचारों को विस्तार दिया. जनमेजय ने कहा, ''आजादी के समय और चीन के हमले के समय दिनकर ने अपनी कविताओं के माध्यम से लोगों के बीच राष्ट्रीय चेतना को बढ़ाया.''

हिंदी लेखक राजेंद्र यादव ने उनके बारे में कहा है, "वे हमेशा पढ़ने के लिए बहुत प्रेरणादायक थे. उनकी कविता पुन: जागृति के बारे में थी. वह अक्सर हिंदू

पौराणिक कथाओं में शामिल होते थे और महाकाव्यों के नायकों का उल्लेख करते थे जैसे कर्ण।

1.7 पुरस्कार/सम्मान :

- दिनकर जी को उनकी रचना कुरुक्षेत्र के लिये काशी नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तरप्रदेश सरकार और भारत सरकार से सम्मान मिला।
- 1959 में उन्हें उनके काम संस्कृति के चार अध्याय के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।
- 1959 में, उन्हें भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण से भी सम्मानित किया गया था।
- भागलपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलाधिपति और बिहार के राज्यपाल **जाकिर हुसैन**, जो बाद में भारत के राष्ट्रपति बने, ने उन्हें डॉक्ट्रेट की मानद उपाधि से सम्मानित किया था।
- गुरुकुल महाविद्यालय द्वारा उन्हें विद्यावाचस्पति के रूप में सम्मानित किया गया था।
- 8 नवंबर 1968 को उन्हें राजस्थान विद्यापीठ द्वारा साहित्य-चूड़ामणि से सम्मानित किया गया था।
- 1972 में, रामधारी सिंह दिनकर को उर्वशी के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।
- 1952 में, उन्हें राज्य सभा के लिए नामांकित किया गया था और वे लगातार तीन बार राज्य सभा के सदस्य रहे थे।
- दिनकर के प्रशंसक व्यापक रूप से मानते हैं कि वह वास्तव में राष्ट्रकवि (भारत के कवि) के सम्मान के पात्र थे।

मरणोपरांत मान्यता (Posthumous Recognition)

- 30 सितंबर 1987 को, उनकी 79वीं जयंती के अवसर पर, भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति शंकर दयाल शर्मा ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की थी।
- 1999 में, रामधारी सिंह दिनकर उन हिंदी लेखकों में से एक थे, जिन्हें भारत की भाषाई सद्भाव का जश्न मनाने के लिए भारत सरकार द्वारा जारी स्मारक डाक टिकटों के एक सेट पर चित्रित किया गया था।

- सरकार ने खगेंद्र ठाकुर द्वारा लिखित दिनकर की जन्मशती पर एक पुस्तक को रिलीज किया था।
- सितंबर 2008 में, कवि रामधारी सिंह दिनकर को उनकी 100 वीं जयंती के अवसर पर श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी, सीएम नीतीश कुमार ने दिनकर चौक पर दिनकर की प्रतिमा का अनावरण किया और दिवंगत कवि को पुष्पांजलि अर्पित की थी. इस मौके पर डिप्टी सीएम सुशील कुमार मोदी और ऊर्जा मंत्री रामाश्रय प्रसाद सिंह भी मौजूद थे. इस अवसर पर सूचना एवं जनसंपर्क विभाग के कलाकारों ने देशभक्ति गीतों का विशेष कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया था।
- उनके सम्मान में, उनका चित्र भारत के प्रधान मंत्री **डॉ मनमोहन सिंह** द्वारा 2008 में भारत की संसद के सेंट्रल हॉल में स्थापित किया गया था।

22 मई 2015 को प्रधान मंत्री **नरेंद्र मोदी** ने विज्ञान भवन, नई दिल्ली में दिनकर के उल्लेखनीय कार्यों संस्कृति के चार अध्याय और परशुराम की प्रतीक्षा के स्वर्ण जयंती मारोह का उद्घाटन किया था।

तथ्य (Facts)

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल दिनकर जी को अपने बेटे की तरह मानते थे. दिनकर के काव्य करियर के शुरुआती दिनों में जायसवाल ने उनकी हर तरह से मदद की थी।

1928 में, दिनकर ने भी **साइमन कमीशन** के खिलाफ गांधी मैदान की रैली में भाग लिया था।

कुरुक्षेत्र में, उन्होंने स्वीकार किया कि युद्ध विनाशकारी है, लेकिन तर्क दिया कि यह स्वतंत्रता के लिए आवश्यक है।

दिनकर की कविता **रवींद्रनाथ टैगोर** और मुहम्मद इकबाल से बहुत प्रभावित थी. इसी तरह, उनके राजनीतिक विचारों को **महात्मा गांधी** और **कार्ल मार्क्स** दोनों ने ही आकार दिया था।

1920 में दिनकर ने पहली बार **महात्मा गांधी** को देखा था. लगभग इसी समय उन्होंने सिमरिया में मनोरंजन पुस्तकालय की स्थापना की थी।

उन्हें सबसे महत्वपूर्ण आधुनिक हिंदी कवियों में से एक माना जाता है. वह भारतीय स्वतंत्रता से पहले के दिनों में लिखी गई अपनी राष्ट्रवादी कविता के परिणामस्वरूप विद्रोह के कवि के रूप में उभरे थे।
उनका अधिकांश बचपन अत्यधिक गरीबी में बीता जो उनकी कविता में परिलक्षित होता था।

रामधारी सिंह दिनकर की मृत्यु :

ऐसा माना जाता है कि रामधारी सिंह 'दिनकर' की मृत्यु 24 अप्रैल 1974 को बेगूसराय, बिहार (भारत) में हुई थी। मृत्यु के समय उनकी आयु 65 वर्ष थी।

****

- यम . मंजुला

2. हूँकार

- रामधारी सिंह 'दिनकर'

उद्देश्य:

दिनकर की कविता के दो मुख्य स्वर हैं। पहला क्रांति, विद्रोह और राष्ट्रीयता दूसरा प्रेम और श्रृंगार। उनके व्यक्तित्व में रोमैंटिक मिज़ाज की निर्णयकारी भूमिका है। क्रांति विद्रोह और राष्ट्रीयता में भी रोमैंटिक स्थितियां होती हैं। हुंकार - में कभी अतीत के गौरव गान की अपेक्षा वर्तमान दैत्य के प्रति आक्रोश प्रदर्शन की और अधिक उन्मुख जान पड़ता है। दिनकर जी हमारे भारत के प्रमुख कहानीकार एवं कवि थे, उनकी कविता में क्रांति, विद्रोह और राष्ट्रीय प्रेम आसानी से झलक जाता था। इसके अलावा उनकी कविता में प्रेम और श्रंगार का भी बहुत ज्यादा महत्व था। दिनकर जी के काव्य में मूल स्वर क्रांति, विद्रोह, राष्ट्रीयता, प्रेम एवं श्रंगार थे। नकी **काव्य** चेतना गतिशील, संचरणशील और हलचल से भरी हुई है। लेकिन इसमें भी **दिनकर** जी की **विशेषता** है कि उनका मनोवेग कभी पस्ती और निराशा का शिकार नहीं होता। उनका **काव्य** अक्सर उमंग, उत्साह और अतिरेक की मनोदशा को व्यक्त करता है। इसी मनोदशा का प्रभाव है कि **दिनकर** हमेशा ÷गांधी जी' के प्रभाव का निषेध करते दिखते है।कविता कोश भारतीय काव्य को एक जगह संकलित करने के उद्देश्य से आरम्भ की गई एक अव्यावसायिक, सामाजिक व स्वयंसेवी परियोजना है।

रूपरेखा :

2.1 प्रस्तावना
2.2 वस्तु और विचार के स्वरूप का विवेचन
2.3 विद्रोही चेतना
2.4 शिल्प योजना
2.5 भक्ति संरचना
2.6 रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में भारतीय संस्कृति
2.7 सारांश – निष्कर्ष
2.8 संदर्भ ग्रंध

2.1 प्रस्तावना :

सिंह की हुंकार है हुंकार निर्भय वीर नर की।
सिंह जब वन में गरजता है,
जन्तुओं के शीश फट जाते,
प्राण लेकर भीत कुंजर भागता है।
योगियों में, पर, अभय आनन्द भर जाता,

सिंह जब उनके हृदय में नाद करता है। दिनकर के प्रथम तीन काव्य-संग्रह प्रमुख हैं– 'रेणुका' (1935 ई.), 'हुंकार' (1938 ई.) और 'रसवन्ती' (1939 ई.) उनके आरम्भिक आत्म मंथन के युग की रचनाएँ हैं। इनमें दिनकर का कवि अपने व्यक्ति परक, सौन्दर्यान्वेषी मन और सामाजिक चेतना से उत्तम बुद्धि के परस्पर संघर्ष का तटस्थ द्रष्टा नहीं, दोनों के बीच से कोई राह निकालने की चेष्टा में संलग्न साधक के रूप में मिलता है।

रेणुका – में अतीत के गौरव के प्रति कवि का सहज आदर और आकर्षण परिलक्षित होता है। पर साथ ही वर्तमान परिवेश की नीरसता से त्रस्त मन की वेदना का परिचय भी मिलता है।

हुंकार – में कवि अतीत के गौरव-गान की अपेक्षा वर्तमान दैत्य के प्रति आक्रोश प्रदर्शन की ओर अधिक उन्मुख जान पड़ता है।

रसवन्ती - में कवि की सौन्दर्यान्वेषी वृत्ति काव्यमयी हो जाती है पर यह अन्धेरे में ध्येय सौन्दर्य का अन्वेषण नहीं, उजाले में ज्ञेय सौन्दर्य का आराधन है।

सामधेनी (1947 ई.)- में दिनकर की सामाजिक चेतना स्वदेश और परिचित परिवेश की परिधि से बढ़कर विश्व वेदना का अनुभव करती जान पड़ती है। कवि के स्वर का ओज नये वेग से नये शिखर तक पहुँच जाता है।

काव्य रचना : इन मुक्तक काव्य संग्रहों के अतिरिक्त दिनकर ने अनेक प्रबन्ध काव्यों की रचना भी की है, जिनमें 'कुरुक्षेत्र' (1946 ई.), 'रश्मिरथी' (1952 ई.) तथा 'उर्वशी' (1961 ई.) प्रमुख हैं। 'कुरुक्षेत्र' में महाभारत के शान्ति पर्व के मूल कथानक का ढाँचा लेकर दिनकर ने युद्ध और शान्ति के विशद, गम्भीर और महत्त्वपूर्ण विषय पर अपने विचार भीष्म और युधिष्ठर के संलाप के रूप में प्रस्तुत किये हैं। दिनकर के काव्य में विचार तत्त्व इस तरह उभरकर सामने पहले कभी नहीं आया था। 'कुरुक्षेत्र' के बाद उनके नवीनतम काव्य 'उर्वशी' में फिर हमें विचार तत्त्व की प्रधानता

मिलती है। साहसपूर्वक गांधीवादी अहिंसा की आलोचना करने वाले 'कुरुक्षेत्र' का हिन्दी जगत में यथेष्ट आदर हुआ। 'उर्वशी' जिसे कवि ने स्वयं 'कामाध्याय' की उपाधि प्रदान की है– 'दिनकर' की कविता को एक नये शिखर पर पहुँचा दिया है। भले ही सर्वोच्च शिखर न हो, दिनकर के कृतित्त्व की गिरिश्रेणी का एक सर्वथा नवीन शिखर तो है ही।

1955 में नीलकुसुम दिनकर के काव्य में एक मोड़ बनकर आया। यहाँ वह काव्यात्मक प्रयोगशीलता के प्रति आस्थावान है। स्वयं प्रयोगशील कवियों को अजमाल पहनाने और राह पर फूल बिछाने की आकांक्षा उसे विव्हल कर देती है। नवीनतम काव्यधारा से सम्बन्ध स्थापित करने की कवि की इच्छा तो स्पष्ट हो जाती है, पर उसका कृतित्व साथ देता नहीं जान पड़ता है। अभी तक उनका काव्य आवेश का काव्य था, नीलकुसुम ने नियंत्रण और गहराइयों में पैठने की प्रवृत्ति की सूचना दी। छह वर्ष बाद उर्वशी प्रकाशित हुई, हिन्दी साहित्य संसार में एक ओर उसकी कटु आलोचना और दूसरी ओर मुक्तकंठ से प्रशंसा हुई। धीरे-धीरे स्थिति सामान्य हुई इस काव्य-नाटक को दिनकर की 'कवि-प्रतिभा का चमत्कार' माना गया। कवि ने इस वैदिक मिथक के माध्यम से देवता व मनुष्य, स्वर्ग व पृथ्वी, अप्सरा व लक्ष्मी अग्र काम अध्यात्म के संबंधों का अद्भुत विश्लेषण किया है।

"रे रोक युधिष्ठर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर पर फिरा हमें गांडीव गदा,
लौटा दे अर्जुन भीम वीर – (हिमालय से)
क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो,
उसको क्या जो दंतहीन विषहीन विनीत सरल हो – (कुरूक्षेत्र से)
मैत्री की राह बताने को, सबको सुमार्ग पर लाने को,
दुर्योधन को समझाने को, भीषण विध्वंस बचाने को,
भगवान हस्तिनापुर आये, पांडव का संदेशा लाये। – (रश्मिरथी से)" ....
(साभार : भारतकोश डाट काम)

2.2 वस्तु और विचार के स्वरूप का विवेचन

रामधारी सिंह एक भारतीय हिंदी कवि, निबंधकार, देशभक्त और अकादमिक थे जिन्हें सबसे महत्वपूर्ण आधुनिक हिंदी कवियों में से एक माना जाता है। भारतीय स्वतंत्रता से पहले के दिनों में लिखी गई उनकी राष्ट्रवादी कविता के

परिणामस्वरूप वे विद्रोह के कवि के रूप में फिर से उभरे। उनकी प्रेरक देशभक्ति रचनाओं के कारण उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में सम्मानित किया गया। **रामधारी सिंह दिनकर** के अनमोल **विचार** जैसे सभी नदियां समुद्र में मिलती हैं उसी प्रकार सभी गुण अंतत: स्वार्थ में विलीन हो जाते है। इच्छाओं का दामन छोटा मत करो , जिंदगी के फल को दोनों हाथों से दबा कर निचोड़ो। जिस काम से आत्मा सन्तुष्ट रहें उसी से चेतना भी संतुष्ट रहती है।

रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना का उद्घोष करने वाले दिनकर चिर युवा हैं, उनके काव्य में अपार उर्जा और प्रेरणा के ओजस्वी स्वर हैं। वे लिखते हैं कि व्यास ने भीष्म का जो चरित्र अंकित किया है, वह अत्यंत उच्चकोटि का है। आश्चर्य है कि उतना बड़ा मनुष्य दुर्योधन का नमक खाया था। दिनकर मानते हैं कि वास्तविक कारण यह था कि वे वृद्ध हो गए थे और कोई भी क्रांतिकारी निर्णय वृद्ध मनुष्य नहीं ले सकता। इन बातों से युवावस्था में, उर्जा में और कर्मठता में दिनकर की गहरी आस्था प्रकट होती है। उद्यमिता में अटूट विश्वास प्रकट होता है:-

''प्रकृति नहीं डरकर झुकती है, कभी भाग्य के बल से, सदा हारती वह मनुष्य के उद्यम से श्रमबल से।''

2.3 विद्रोही चेतना

'दिनकर' स्वतन्त्रता पूर्व एक विद्रोही कवि के रूप में स्थापित हुए और स्वतन्त्रता के बाद 'राष्ट्रकवि' के नाम से जाने गये। वे छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओ में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों का चरम उत्कर्ष हमें उनकी कुरुक्षेत्र और उर्वशी नामक कृतियों में मिलता है। श्री अरविन्द के व्यक्तित्व में योगी, कवि और दार्शनिक, तीनों का समन्वय था और वे सब-के-सब एक ही लक्ष्य की ओर गतिशील थे। ...उनके दर्शन और काव्य की जो वास्तविक शक्ति है, उनके भीतर जो प्रामाणिकता है, वह श्री अरविन्द की योगसाधना से आई है। योग के बल से ही उन्होंने सत्य को देखा और योग के बल से ही उन्हें यह शक्ति मिली कि सत्य को वे भाषा में अभिव्यक्त कर सकें।' राष्ट्रकवि दिनकर के इस उद्धरण से स्पष्ट पता चलता है कि श्री अरविन्द की साधना अथाह थी। उनका व्यक्तित्व गहन और विशाल था और उनका साहित्य दुर्गम समुद्र

के समान था। प्रस्तुत कृति में दिनकर ने योगिराज अरविन्द के विकासवाद, अतिमानव की उनकी अपनी अवधारणा और साहित्यिक मान्यताओं का सरल, सुबोध तरीके से परिचय दिया है। यही नहीं, इस पुस्तक में संकलित हैं दिनकर द्वारा अपनी विशिष्ट भाषा-शैली में अनूदित श्री अरविन्द की चौदह महत्त्वपूर्ण कविताएँ भी। 'चेतना की शिखा' योगिराज अरविन्द का ही नहीं, युग-चारण नाम से विख्यात रामधारी सिंह 'दिनकर' की विराट मानसिकता का भी परिचय देनेवाली एक विचार-प्रधान बहुमूल्य कृति है। राष्ट्रकवि 'दिनकर' छायावादोत्तर कवियों की पहली पीढ़ी के कवि थे। एक ओर उनकी कविताओं में ओज, विद्रोह, आक्रोश और क्रान्ति की पुकार है तो दूसरी ओर कोमल श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति। वे संस्कृत, बांग्ला, अंग्रेजी और उर्दू के भी बड़े जानकार थे।

रामधारी सिंह 'दिनकर' हिन्दी साहित्य में छायावादोत्तर काल के प्रमुख कवि, साहित्यकार थे जो 'राष्ट्रकवि' की उपाधि से विभूषित, आधुनिक युग के जनचेतना के गायक, वीर रस के श्रेष्ठतम क्रांतिकारी कवि के रूप में, सर्वोच्च पद पर आसीन हैं। ओजपूर्ण, क्रांति की पुकार वाली कविताओं के कारण विद्रोही कवि के रूप में प्रसिद्ध दिनकर, श्रृंगारपूर्ण, कोमल भावनाओं वाली कविताओं के लिए भी विख्यात हुए। सर्वथा विपरीत प्रवृत्तियों का चरमोत्कर्ष 'हुंकार' 'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी' कृतियों में दृष्टिगोचर है।

2.4 शिल्प योजना : शिल्प का प्रभाव काव्य पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। 'शिल्प' शब्द 'शील' धातु में 'प' प्रत्यय लगने से बना है। 'शील' का अर्थ है-ध्यान करना, पूजन करना, अर्चन करना, अभ्यास करना। 'प' प्रत्यय पीने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अत: समवेत रूप में 'शिल्प' शब्द का अर्थ होगा- ध्यान या अभ्यास पीने वाला। वी.एस. आप्टे के मतानुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति शिल्+पक् है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध का विषय जयपाल कृत 'दरवाज़ों के बाहर: संवेदना और शिल्प' है। अत: संवेदना के विवेचन-विशेषण के उपरांत शिल्प की समीक्षा की जा रही है। परिवेश से उत्पन्न भावों के साथ जब कल्पना का उचित समन्वय होता है तो कविता का सृजन होता है। इन संवेदनाओं को शब्दों का चोला पहनाना पड़ता है। संवेदनाओं को अस्तित्व प्रदान करने के लिए जिन तत्त्वों का सहारा लेना पड़ता है। उन सभी का विवेचन शिल्प के अन्तर्गत किया जाता है। शिल्प किसी भी कवि के जागरूक एवं सचेष्ट प्रयत्नों की मूर्त्त सिद्धि है। इसकी मदद

से कवि अपनी संवेदना को सम्प्रेषित करता है। डॉ. बैजनाथ सिंहल के शब्दों में- “किसी भी काव्य कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढ़ांचा तैयार किया जाता है, वे सब काव्य के शिल्प के तत्व कहे जाते हैं।” शिल्प कथ्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने का एकमात्र साधन है। कविता के लिए केवल संवेदना ही पर्याप्त नहीं होती, अपितु भावानुकूल भाषा, उपयुक्त शब्द, सार्थक पद-विन्यास, अलंकार, बिम्ब, प्रतीक आदि की भी जरूरत होती है। इनके अभाव में अभिव्यक्ति को प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। श्रेष्ठ और सुंदर कविता के लिए संवेदना एवं सम्प्रेषण का समुचित समन्वय परमावश्यक है। अत: स्पष्ट है कि किसी भी उत्तम काव्य की रचना के लिए संवेदना पक्ष जितना महत्त्वपर्ण है, शिल्प पक्ष उतना ही सशक्त एवं सबल होना जरूरी है।

2.5 भक्ति संरचना : भक्तिकालीन हिंदी **काव्य** की प्रमुख **भाषा** ब्रजभाषा है। इसके अनेक कारण हैं। परंपरा से पछाँही बोली शौरसेनी मध्यदेश की **काव्य-भाषा** रही है। ब्रजभाषा आधुनिक आर्यभाषा काल में उसी शौरसेनी का रूप थी। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास के मध्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता को भक्ति आन्दोलन के रूप में पहचाना जा सकता है। साहित्य के क्षेत्र में यह **भक्ति काव्य** के विराट रस श्रोत के रूप में प्रकट हुआ।

भारतीय भक्ति-आंदोलन का बहुत ही महत्त्वपूर्ण विस्तृत इतिहास है। भारतीय भाषाओं में मध्य युग में जो विपुल भविति-साहित्य निर्मित हुआ है वह भक्ति-आंदोलन की महती देन है। वैदिक काल से लेकर भक्ति-आंदोलन के काल तक भक्ति-भावना का विकास कई अवस्थाओं में हुआ है। आज वैष्णव भक्ति का जो स्वरूप है, वह बहुत-कुछ उस वैष्णव भक्ति-आंदोलन का परिणाम है, जिसका नेतृत्व तमिल-प्रदेश के वैष्णव भक्त आलवारों ने ईसा की छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक किया था। आलवारोत्तर काल में अर्थात् मध्य युगमें वैष्णव भक्ति-आंदालन उत्तरोत्तर प्रबल होकर एक व्यापक जन-आंदोलन बन गया। बंष्णव-भक्ति आंदोलन के प्रेरक आकर्षक तत्वों ने ही मध्य युग में भक्ति-आंदो- लन को लोकप्रिय और देशव्यापी रूप प्रदान कर भक्तिमय वातावरण का सृजन किया,जिसके फलस्वरूप हिन्दी तथा' अन्य भारतीय भाषाओं में मध्य युग में विशाल वेष्णब भक्ति-साहित्य का प्रणयन हुआ | हिन्दी वष्णव भक्ति-साहित्य के प्रेरणा-ख्रोतों पर सम्यक प्रकाश डालने के लिए हिन्दी-प्रदेश के वेष्णव भक्ति- आंदोलन के व्यापक रूप का परिचय

अत्यन्त आवश्यक है। चूंकि हिन्दी-प्रदेश के बेष्णव भक्ति-आंदोलन का पूर्वापर सम्बन्ध दक्षिण में उदित वैष्णव भक्ति-आंदो- बन से हैं, जतः हिन्दी के बंष्णबभक्ति-राहित्य के उचित मूल्यांकन के लिए एक विस्तुत कलवर में वेष्णव भक्ति-आंदालन का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। जब तक प्रकाशित हिन्दी-यंदां में वेष्णब भकति-आंदोलन का सम्पूर्ण (अख- ण्डिल) लिन सामने नहीं आया है। कारण नह रहा है कि यद्यपि विद्वानों ने सर्वे- सम्मति से ब्णब भक्रिति-आंदोलन क। प्रारम्भ दक्षिण के आलवार भवतों से माना है, तो भी आवश्यक मात्रा में तमिल के आलवार सन्तों के भक्ति-साहित्य के उजित मुल्यांकन के अभाव में वेष्णव भक्ति-आंदोलन का संतुलित इतिहास के

सामने आ नहीं राका है । अतः हिन्दी के वैष्णव भवित-साहित्य के सम्यक अध्ययन के लिए वैष्णव भकिति-आंदोलन का संतुलित इतिहास अपेक्षित रह गया। प्रस्तुत लेखक की यह निश्चित मान्यता है कि हिन्दी वेष्णव भक्ति-साहित्य का अध्ययन तभी सर्वांगीण हो! सकता है, जब कि अन्य भारतीय भाषाओं के भक्ति-साहित्यों के सन्दर्भ में उसका अनुधीलन और मूल्यांकन किया जाए। हिल्दी के मध्यथुगीन भक्ति भावना है।

2.6 रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में भारतीय संस्कृति :

आधुनिक हिंदी साहित्य में रामधारी सिंह 'दिनकर' उन विरले साहित्यकारों में से हैं, जो अपनी लेखनी द्वारा भारतीय संस्कृति और वाङ्गमय को जन मानस तक पहुंचाया है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीन एवं समृद्ध संस्कृतियों में से एक है।भारतीय संस्कृति विश्व के कोने कोने में फैली है। भारतीय संस्कृति विश्व की श्रेष्ठ संस्कृति है। आरम्भ से ही हमारी भारतीय संस्कृति अत्यंत उदार, उदात्त, समन्वयवादी, सशक्त एवं जीवन्त रही है। भारतीय संस्कृति सर्व पोषक रही है। भारतीय संस्कृति ने समस्त भूमंडल को अपना परिवार माना है तथा सब के कल्याण की कामना की 'वसुधैव कुटुंबकम' तथा सभी सुखी हों 'सर्वे भवंतु सुखिन:' यही भारतीय संस्कृति की भूमिका रही है।

संस्कृति संस्कार, आचरण, शिष्टाचार, सभ्यता है।। मनुष्य की जीवन शैली है।संस्कृति मनुष्य जीवन की अपनी निजी संपत्ति है जो कि उन्हें परम्परागत प्राप्त होती है। संस्कृत की परिभाषा देते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि -

"असल में सांस्कृतिक जीवन का एक तरीका है यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं वह भी हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपनी संतानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे संपूर्ण जीवन को व्यापे हुए हैं तथा जिसकी संरचना एवं विकास में अनेक सदियों का हाथ है। यही नहीं संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मांतर तक करती है।" भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण विश्व की संस्कृतियों में अग्रगण्य और समृद्धशाली रही है।दिनकर की रचनाओं में वर्णित भारतीय संस्कृति की विशेषताएं निम्नलिखित हैं--

<u>अहिंसा</u> :

अहिंसा की परम्परा वेदों से ही प्राप्त होती है।अहिंसा का अर्थ है हिंसा न करना।हमारे वैदिक एवं धर्म ग्रंथों में अहिंसा पर बल दिया गया है- 'अहिंसा सत्यवचनम सर्वभूतानुकम्पनम' को उत्तम धर्म माना गया है तथा "अहिंसा परमोधर्मः अहिंसा परमा गतिः अहिंसा परमाप्रीतिस त्वहिंसा परमनपद्य ।"2 दिनकर ने अपने काव्यों में हिंसा तथा अहिंसा का भी चित्रण बखूबी किया है। मानव जीवन मे अहिंसा का महत्वपूर्ण भूमिका है। इसलिए इसे परमधर्म माना गया है। अहिंसा न्याय और शांति के वक्त धर्म है, परन्तु जब अन्याय और अशांति का समय होता है, बलात स्वत्वों का अपहरण किया जाता है, तब उस समय अहिंसा नहीं बल्कि हिंसा धर्म होती है। दिनकर ने लिखा है कि-"

कौन केवल आत्मबल से जूझकर जीत
सकता देश का संग्राम
पाश्विकता जब खड्ग लेती उठा आत्मबल का
एक वश चलता नहीं।"2

<u>सत्य का पालन</u> :

भारतीय संस्कृति अनादिकाल से ही सत्य को महत्वपूर्ण स्थान देती आ रही है। पौराणिक ग्रंथों में भी इसका उल्लेख मिलता है।बुद्ध, गांधी जी जैसे महात्माओं ने भी 'सत्यं वेद, धर्म कर जैसे आदर्शों पर बल देते थे। मुण्डकोपनिषद में भी कहा गया है कि- **"सत्यमेवजयतेनानृतं। सत्येन पथ्यावितत्तेद्धवयान:।।3** भारत मे सत्य को ईश्वर रूपी माना गया है।सत्य पर ही धर्म की स्थापना होती है।यहां सिर्फ सत्य बोलने का उपदेश दिया जाता है।

सत्य का पालन भारतीय परम्परा का अभिन्न अंग है।जीवन की सफलता के लिए सत्य बोलने अत्यावश्यक है। दिनकर ने भी अपनी रचनाओं में सत्य का प्रतिरूप प्रस्तुत किया है।रश्मिरथी इसका ज्वलंत उदाहरण है। इसके नायक दानवीर कर्ण अंत समय तक सत्य के साथ खड़े रहते हैं। कर्ण की सत्यवादिता और मित्रता का परिचय कृष्ण-कर्ण संवाद में मिलता है। वर्तमान में यह बात सत्य है कि आज का मनुष्य सत्य से कोसों दूर होता जा रहा है।दिनकर ने 'परशुराम की प्रतीक्षा' में सत्य को इस प्रकार व्यक्त किया है-" जो सत्य जानकर भी सत्य न कहना है.

या किसी लोभ के विवश मूक रहता है
उस कुटिल राजतन्त्री कर्दय को धिक है
यह मूक सत्यहंता कम नहीं बाढिक है।।"4

दिनकर जी की रचनाओं का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने पूर्ण रूप से सत्य पर बल दिया है। आधुनिक जीवन को सफल बनाने के लिए सत्य का होना अति आवश्यक है।

निष्काम कर्म :

भारतीय संस्कृति में कर्मवाद का अपना एक विशिष्ट स्थान है।कहा जाता है कि अच्छे कर्म करने वाला व्यक्ति पुण्य का अर्जन करता है। गीता में कहा गया है कि कर्म करते रहो फल की इच्छा मत करो -"

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन
मां कर्म फल हेतु र्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।"5

दिनकर के कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, उर्वशी आदि रचनाओं में कर्म के उदाहरण मिलते है।दिनकर का मानना है कि क्रिया धर्म को छोड़कर मनुष्य कभी भी सुखी नहीं हो सकता है- "कर्मभूमि है निखिल महीतल

जब तक नर की काया
जब तक हैं जीवन के अणु-अणु
में कर्तव्य समाया
क्रिया धर्म को छोड़ मनुज
कैसे निज सुख पायेगा ?
कर्म रहेगा साथ ,भाग वह
जहाँ कहीं जाएगा।।"6

कर्म की महत्ता प्राचीन होते हुए भी वर्तमान समय मे प्रासंगिक है। वर्तमान जीवन को सार्थक बनाने के लिए भी कर्म करना आवश्यक है। रश्मिरथी में भी दिनकर ने कर्म का उल्लेख किया है। इसके नायक दानवीर कर्ण अपने भुजबल को ही सर्वश्रेष्ठ जाति मानते हैं।कर्म की ओर संकेत करते हुए कहा है कि- "पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो मेरे भुजबलसे

रवि -समान दीपित ललाट से और कवच कुंडल से
पढो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज-प्रकाश
मेरे रोम-रोम में कित है मेरा इतिहास।।"7

श्रम के महत्ता पर बल देते हुए दानवीर कर्ण ने आधुनिक मनुष्य को कर्म करने की प्रेरणा देते हैं- " श्रम से नहीं विमुख होंगे, जो दुःख से नहीं डरेंगे

सुख के लिए पाप से जो नर संधि न कभी करेंगे।
कर्ण-धर्म होगा धरती पर बलि से नहीं मुकरना
जीना जिस अप्रतिम तेज से उसी शासन से मरना।।"8

वास्तव में मनुष्य को कर्म ने निरत रहना चाहिए। इस प्रकार दिनकर ने अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के तत्व निष्काम कर्म को प्रस्तुत किया है।

कर्तव्य पालन :

मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए कर्तव्य पालन भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। वर्तमान मानव अपने कर्तव्य और वचन से दूर होता जा रहा है। दिनकर ने रश्मिरथी के नायक कर्ण के माध्यंम से कर्तव्य पालन और वचन बद्धता दिखाया है। कर्ण दुर्योधन की मित्रता के वचन निभाता है।वह अपने वचन पर अटल रहता हैकि जबतक भीष्म पितामह जीवित रहेंगे तब तक युद्ध मे प्रवेश नहीं करूंगा । कर्ण कुंती को भी वचन देता है कि युद्ध मे अर्जुन को छोड़कर किसी भी पांडव भाई को नहीं मारूँगा।इस वचन की पूर्ति के लिए कर्ण अपने सारथी शल्य की डांट फटकार भी सहता है। कर्ण कहता है-" मैं एक कर्ण अतएव, मांग लेता हूँ

बदले में तुमको चार कर्ण देता हूँ।
छोड़ूँगा मैं तो कभी नहीं अर्जुन को
तोड़ूंगा कैसे स्वयं पुरातन प्रण को?
पर अन्य पांडवों पर मैं कृपा करूँगा ,
पाकर भी उनका जीवन नहीं हरूंगा।
अब जाओ हर्षित हृदय सोच यह मन में।

पालूँगा जो कुछ कहा,उसे मैं रण में।।"9

वर्तमान युग मे मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया कि वह अपने अधिकार चाहता है और कर्तव्य को भूलता जा रहा है। वह वचन देखर मुखर जाता है।

<u>मैत्री भावना</u> :

भारतीय संस्कृति में मित्रता का महत्त्वपूर्ण उल्लेख किया गया है। वर्तमान समय मे व्यक्ति स्वार्थपरता मे इतना व्यस्त है कि वह अपनी मित्रता को भूलता जा रहा है।कहा जाता है कि व्यक्ति के जीवन मे माता-पिता के बाद मित्र का ही स्थान होता है।दिनकर ने अपने काव्य में मित्रता का चित्रण किया है। दुर्योधन और कर्ण की मित्रता एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती है जो समूचे भारतीय इतिहास में नहीं मिलता।रश्मिरथी में कृष्ण के विविध प्रकार के प्रलोभन देने पर भी कर्ण अपनी मित्रता नहीं छोड़ता। मित्रता को वह प्रमुख स्थान देता है।कर्ण मित्रता के विषय मे कहता है- "मैत्री की बड़ी सुखद छाया, शीतल हो जाती है काया

धिक्कार योग्य होगा वह नर,
जो पाकर भी ऐसा तरुवर
हो अलग खड़ा कटवाता है
खुद आप नहीं कट जाता है।"10

कर्ण कहता भी है कि दुर्योधन का साथ देने पर मेरा कोई हित साधन नहीं है। मुझे धन दौलत की चाह नहीं है। मित्रता ही मेरे लिए सबकुछ है-" मित्रता बड़ा अनमोल रत्न, कब इसे तोल सकता है धन?

धरत की तो है क्या बिसात ? आ जाये अगर बैकुण्ठ हाथ
उसको भी न्यौछावर कर दूँ, कुरूपति के चरणों पर धर दूँ।"11

कर्ण के माध्यम से दिनकर ने मित्रता की आधुनिकता पर प्रकाश डाला है।कर्ण के उत्तम एवम पवित्र भाव के साथ ही वचन प्रियता का मेल देखने को मिलता है।वर्तमान मानव को आदर्श जीवन व्यतीत करने के लिए मित्रता बहुत जरूरी है।

<u>त्याग और तप</u> :

भारत एक ऐसा देश है जहाँ त्याग और तपस्या को उच्चतम मूल्य माना जाता है। भोग और लौकिक सुखों को तुच्छ एवं त्याज्य माना जाता है। भारत का गरिमामयी इतिहास त्याग की परम्परा से भरा पड़ा है। कवि दिनकर भी मनुष्य के जीवन मे त्याग और तप को महत्वपूर्ण मानते हैं।मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए वैभव

विलास से अधिक तप और त्याग आवश्यक है। 'रश्मिरथी' के कर्ण त्याग का प्रतिरूप है।।संसार के त्यागी विभूतियों का वर्णन कवि ने इस प्रकार से किया है-"व्रत का अंतिम मोल राम ने दिया त्याग सीता को

जीवन की संगिनी ,प्राण की मणि का सुपुनीता को
दिया अस्थि देकर दधिची ने, शिवि ने अंग कतर कर
हरिश्चंद्र ने कफ़न माँगते हुए सत्य पर अड़कर ।।"12

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मनुष्य को अपने वैयक्तिक जीवन को शांतिपूर्ण बिताने के लिए त्याग और तप की आवश्यकता है।

<u>पाप और पुण्य</u> :

मनुष्य के अच्छे कर्म और बुरे कर्म पाप -पुण्य का निर्धारण करते हैं। कुरुक्षेत्र में दिनकर जी ने पाप-पुण्य पर प्रकाश डाला है। पाप -पुण्य के सम्बंध में उनका कहना है कि-" हे मृषा तेरे हृदय की जल्पना, युद्ध करना पुण्य या दुष्पाप है।

क्योंकि कोई कर्म है ऐसा नहीं, जो स्वयं ही पुण्य हो ,या पाप हो।" 13

<u>दानशीलता</u> :

प्राचीनकाल से ही दानशीलता भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता रही है।दिनकर की रचनाओं में दानशीलता देखने को मिलती है।दिनकर ने रश्मिरथी के पात्र कर्ण की दानशीलता के नए आयाम में प्रस्तुत किया है।कवि ने कर्ण को शिवि, दधिचि की परम्परा का अधिकारी बताया है।कहा जाता है कि कर्ण के समान भारत मे कोई दानवीर नहीं होगा।स्वयं दिनकर ने कर्ण की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि -

"युग -युग जिएँ कर्ण,दलितों के वे दुःख दैन्य हरण हैं
कल्पवृक्ष धरती के, अशरण की अप्रतिम शरण हैं
पहले ऐसे दानवीर धरती पर कब आया था?
इतने अधिक जनों को किसने यह सुख पहुंचाया था?" 14

कर्ण की दानशीलता देखकर देवराज इंद्र तक भी लज्जित हुए हैं। कर्ण के द्वार से कोई खाली हाथ नहीं लौटा है। दान के नाम पर कर्ण अपना तन -मन- धन तक न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। सच मे कर्ण का चरित्र वर्तमान मानव के लिए प्रेरणास्रोत है। कर्ण अपनी इसी दानशीलता की वजह से अमर हो गया।

गुरु भक्ति : प्राचीन काल मे गुरु शिष्य का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है।गुरु को देवता के समान माना जाता था। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया है कि- ***"विद्वानों हि देवा: ।"15*** अर्थात जो विद्वान है वे देवताओं की श्रेणी में आते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद में भी नैतिकता की एक चरम सीमा का आदर्श देखने को मिलता है-

"मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव।"16 अर्थात माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना देव सेवा कहलाता है। भारतीय परम्परा के अनुसार गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है।दिनकर ने भी अपने काव्यों को गुरु को सर्वोच्च स्थान देकर उनका सम्मान किया है। उनकी रचना कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी एवम उर्वशी इसका ज्वलंत उदाहरण हैं।रश्मिरथी का कर्ण गुरु भक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

आधुनिक समय मे गुरु-शिष्य परम्परा में गिरावट आ रही है।जो कि नई पीढ़ी के लिए खतरा है। मानव समाज के उज्ज्वल भविष्य को बनाये रखने के लिए गुरु भक्त परम्परा को बनाये रखना होगा।

अतिथि सत्कार :

भारतीय संस्कृति में अतिथि सत्कार को विशेष महत्व दिया जाता है।अतिथियों के आने पर उनका उचित रूप से आदर -सम्मान किया जाता है। दिनकर के काव्यों में अनेक स्थान पर अतिथि सत्कार का प्रसंग देखने को मिलता है। 'रश्मिरथी'में कर्ण अतिथि सत्कार का मूर्ति माना जाता है। कर्ण कुंती के आने पर विशेष स्वागत सत्कार करता है- "पद पर अंतर का भक्ति भाव धरता हूँ

राधा का सुत मैं देवि ।नमन करता हूँ।
हैं कौन? देवि! कहिये, क्या काम करूं मैं?
क्या भक्ति भेंट चरणों पर आन धरूँ मैं? "17

कुरुक्षेत्र में राजसूय यज्ञ में उपस्थित अतिथि राजाओं का युधिष्ठिर के द्वारा सम्मान देखने को मिलता है -

सच है सुकृत किया अतिथि
भूतों को तुमने मान से
अनुनय, विनयशील,समता से
मंजुल,भिष्ट विचन से ।" 18

आज भी अतिथि सत्कार जनजीवन की एक परम्परा बन गयी है। दिनकर ने भारतीय संस्कृति की इस परम्परा को अपने काव्यों में विशेष महत्व दिया।

नारी के प्रति श्रद्धा भाव :

संसार मे नारी विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना है। सृष्टि के विकास क्रम में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषद में सृष्टि की सम्पूर्ण रिक्तता की पूर्ति नारी से ही मानी गयी है-***"अयमाकाशः स्त्रियां पूर्यते ।" 19***

भारतीय संस्कृति में मन्त्र -द्रष्टा ऋषियों ने नारियों को गौरवशाली व्यक्तित्व प्रदान किया है।वैदिक काल मे नारी को उज्ज्वल रूप प्रदान करता है- ***"विराडियं सुप्रज्ञा अत्यजैषीत।"20*** निम्न मन्त्रों से पता चलता है कि प्राचीन काल मे नारियों की स्थिति उन्नत थी।

दिनकर ने अपने काव्यों में नारी को पूरी श्रद्धा, आदर एवं सम्मान के साथ वर्णित किया है। वेद युगीन नारी की स्थिति ठीक थी पर आधुनिक नारी की स्थिति ज्यादा ठीक नहीं है। फिर भी धार्मिक दृष्टि से तत्कालीन नारी का पर्याप्त महत्व है।यज्ञादि सम्बन्धी अनुष्ठानों के अवसर पर पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती थी। निपुणिका कहती है-" यज्ञ न होगा पूर्ण बिना कुलवनिता परिणीता के,

इसी धर्म के लिए आपको भुवनेश्वरी जीना है।" 21

इसी तरह औशनरी का भी निम्न कथन उस समय की नारी की धार्मिक महत्ता को ही उजागर करता है-

"याग-यज्ञ ,व्रत -अनुष्ठान में ,किसी धर्म -साधना में
मुझे बुलाये बिना नहीं प्रियतम प्रवृत्त होते थे।"22

रश्मिरथी का कर्ण के मन मे नारी के प्रति श्रद्धा का भाव विद्यमान है। इसी लिये वह कुंती को न जानते हुए भी उनका आदर सम्मान करता है।

वस्तुतः कहा जा सकता है कि दिनकर ने अपने काव्यों में भारतीय संस्कृति का एक नया रूप प्रस्तुत किया है। दिनकर ने नारी के प्रति श्रद्धा, कामना,निष्काम कर्म, करुणा, विश्व बंधुत्व की भावना, पाप-पुण्य, अतिथि सत्कार आदि का नवीनीकरण प्रस्तुत किया है ।

दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

दिनकर का पहला प्रकाशित काव्य-संग्रह 'बारदोली विजय' है पर इसकी कोई भी प्रति कहीं उपलब्ध नहीं है। इसमें 10 कविताएँ संकलित हैं जिसमें दिनकर की राष्ट्रीयता भावना बीज रूप में विद्यमान है। इसके भी पहले दिनकर ने 'वीर

बाला' और 'मेघनाद वध' नामक काव्य लिखने आरंभ किए थे जो अधूरे रह गए और जिनकी पांडुलिपियों का कहीं पता नहीं है। प्रणभंग की रचना दिनकर ने मैट्रिक पास करने के बाद 1928 मे की। प्रणभंग जयद्रथ वध की तरह ही एक खंडकाव्य है जिसकी कथा महाभारत से ली गई है। प्रणभंग में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का मार्ग अपनाया गया है। इसमें कहानी तो महाभारत से ली गई है, पर उसके माध्यम से यह कहा गया है कि गुलामी का अपमान भरा जीवन जीना कलंक है, इसलिए युद्ध से पहले जब युधिष्ठिर के मन में पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म की दुविधा पैदा होती है तो अर्जुन, भीम एक साथ आक्रोश से फट पड़ते हैं -

'अपना अनादर देखकर भी आज हम जीते रहे,
चुपचाप कायर से गरल के घूँट यदि पीते रहे,
तो वीर जीवन का कहाँ रहता हमारा तत्व है
इससे प्रकट होता यही हममें न अब पुरूशार्थ हैं।'

कवि के अनुसार यदि भारत गुलाम था, तो इसका कारण भारत से पुरूषार्थ का लोप था। कवि की दूसरी कृति रेणुका 1929-1925 के बीच लिखी गई। कुल 33 कविताओं का एक प्रतिनिधि संग्रह है। जिसका प्रकाशन 1935 में हुआ था। इसमें राष्ट्रीय कविताएँ संग्रहीत हैं। अतीत की गौरव गाथा और युगीन समस्याओं को उन्होंने पूरे तेज के साथ उजागर किया है इस काव्य की पहली कविता मंगल आवाह्न में वह श्रृंगी फूंक कर सोए प्राणों को जगाना चाहता है -

''दो आदेश फूंक दूँ श्रृंगी
उठे प्रभाती राग महान
तीनों काल ध्वनित हो स्वर में
जागें सुप्त भुवन के प्राण''

कवि ऐसे स्वरों को गाना चाहता है। जिससे सारी सृष्टि सिहर उठे। कवि देश में व्याप्त अत्याचार, आडंबर और अहंकार को दूर करने के लिए शंकर के ताडंव तत्जन्य ध्वंस की कामना करता है -

"विस्फारित लख काल नेत्र फिर, कांपे त्रस्त अतनु मन ही मन
स्वर-स्वर भर संसार, ध्वनित हो नगपति का कैलाश शिखर
नाचो हे नटवर नाचो नटवर।"

हुंकार कवि की राश्ट्रीय रचनाओं का दूसरा संकलन है जिसका प्रकाषन 1928 में हुआ।हुंकार का कवि तूफान का आह्वान करता है। कवि स्वर्ग तक को जला देने की

इच्छा व्यक्त करता है। 'आलोक धन्वा' काव्य में दिनकर क्रान्ति द्रष्टा के रूप में उपस्थित होते हैं। उनका रूप बड़ा दिव्य और ज्वलंत है -

"ज्योतिर्धर कवि मैं ज्वलित और मंडल का
मेरा शिखण्ड अरूणाभ किरीट अनल का
रथ में प्रकाश के अश्व जुते हैं मेरे
किरणों में उज्जवल गीत गुंथे है मेरे।"

हुंकार की कविताओं में सर्वत्र मानव पीड़ा विद्रोह की ऊर्जा और बलिदान का स्वर गूँज रहा है। इसका धरातल सामाजिक और राष्ट्रीय दोनो हैं। इसमें आने वाले संदर्भ दोनों के है कवि को सामाजिक विशमता का बड़ा स्पश्ट बोध है। वे समझते है कि एक ओर किसान मजदूर हैं जो श्रम करके भी भूखे रहते है, दूसरी ओर परोपजीवी वर्ग है जो शोषणजन्य भोग विलास का सुख लूट रहा है। कवि ने शोषित वर्ग की पीड़ा और षोशक सभ्य क्रूरता के तनाव को उद्घाटित किया है-

"बोले कुछ मत क्षुधित, रोटियाँ खान-छीन खाएँ यदि कर से,
यही षान्ति, जब वे आएँ, हम निकल कर जाएँ चुपके से निज घर से।"

यह कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि चेतना आग और रक्त में निवास करती है। आग और रक्त का संग्रह उनकी काव्य चेतना का शुचितम तीर्थ है। वस्तुतः क्रांति के यही दो कगार है। बाह्य परिस्थितियाँ जब व्यक्ति को तिरस्कृत कर व्यक्ति के समस्त आतंरिक मूल्यों और अहं के उद्रेकों पर तिरस्कार-मयी व्यंग्य की तीखी बौछारें बन जाती है तब आग की सृष्टि होती है जो पहले अज्ञात ज्वालामुखी की भाँति मन से सुलगती रहती है। इस आग की संधि-धमनियों में दौड़ते हुए रक्त से होती है। रक्त खौल उठता है तथा यही रक्त सामूहिक क्रांति शक्ति संगठित करता है। राश्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने विषाल देष के प्रति अनुराग का उच्च भाव राश्ट्र वंदना के रूप में मुखरित किया है जो कि निम्नांकित पंक्तियों में दृश्टव्य है-

"मेरे नगपति मेरे विषाल
साकार, दिव्य, गौरव, विराट
पौरूश के पूँजीभूत ज्वाल
मेरे जननी के हिम-किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल।"

कुरूक्षेत्र 1943 में प्रकाशित दिनकर का प्रथम प्रबंध काव्य है। विचारों की दृष्टि से ही कवि इसे प्रबंध काव्य मानता है। कवि कुरूक्षेत्र में राष्ट्रवादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण का ही विशेष समर्थन करता है।

दिनकर ने कुरूक्षेत्र में युद्ध के दो स्तर स्पश्ट किये है। बाह्य और आतंरिक। सनातन काल से चलने वाला देवासुर संग्राम आतंरिक युद्ध है, शेष सभी बाह्य दोनो के कारण समान और लगभग एक से है। जब तक मन में विकारी भाव रहेंगे तब तक समाज में युद्ध अवश्यंभावी है। कुरूक्षेत्र के छठे सर्ग में इसी अखण्ड शांति का संदेश कवि देता है। कवि का द्वंद है-

“है बहुत देखा सुना मैंने मगर
भेद खुल पाया धर्माधर्म का
आज तक ऐसा कि रेखा खींच कर
बाँट दूँ मैं पाप को औ पुण्य को।”

कुरूक्षेत्र अपने समय और समाज के प्रति जागृति का संदेश देने वाला समन्वय की भूमि पर स्थित काव्य है जहाँ युद्ध की अनिवार्यता, धर्म एवं शान्ति के मंगल की शुभकामना सन्निहित है।राष्ट्रकवि दिनकर की रचनाएँ राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। सामधेनी का प्रकाशन सन् 1946 में हुआ था। सन् 1941 से 1946 तक का काल देश में क्रांति का काल रहा है। समग्र देश का प्रतिशोध और प्रतिहिंसा का स्वर इसमें व्यक्त हुआ है। इस कृति का मूल स्वर क्रांति ही है।

कवि पुरोधा बनकर क्रांति यज्ञ में बलिदानों की समिधा द्वारा अग्नि प्रज्वलित करना चाहता है। सामधेनी की प्रथम कविता ‘अचेतमृत-अचेतन‘ शिला मंगलाचरण रूप है। संग्रह के प्रथम सात गीत भाव प्रधान मुक्तक है, उनमें कवि के राष्ट्रीय भाव बड़ी प्रवणता से व्यक्त हुए हैं। कवि की दृढ़ता रागपूर्ण स्वर में व्यक्त हुई है। वह चाँद से बातें करते हुए समय उसे छिपी चेतावनी तो दे ही देता है-

“स्वर्ग के सम्राट को जाकर खबर कर दे,
रोज ही आकाष चढ़ते जा रहे हैं वे,
रोकिए जैसे बने इन स्वप्न बालों को
स्वर्ग की हो और बढ़ते आ रहे हैं वे।”

सामधेनी में कवि ने काव्य का विषय स्वर्ग की अपेक्षा धरती को चुना है। हुंकार का क्रान्तिकारी कवि स्थिर हो गया है। जो युद्ध के संदर्भ में शांति की ओर विचारशील हो गया है। श्री विश्वनाथ सिंह के शब्द निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत करना पर्याप्त है-

"दिनकर का यह काव्य संग्रह सामधेनी इस प्रकार यौवन के उद्दाम वेग की वाणी ही नहीं युग की वाणी भी है।" इतिहास के आँसू में कवि की दस प्रारंभिक ऐतिहासिक संग्रहीत हैं। इन कविताओं का रचनाकाल 1932 ई0 से 1948 ई0 तक है। ये सभी कविताएँ हमारे इतिहास से सम्बन्धित है, किन्तु कवि का राश्ट्रप्रेम और उसका ओजपूर्ण स्वर भी इनमें मुखरित है। इस काव्य संग्रह के अन्तर्गत कवि ने इतिहास के महान योद्धाओं की वीरता का गुणगान किया है। सामान्यतः कवि ने वर्तमान की समस्याओं के लिए अतीत का द्वार खटखटाया है। इस प्रक्रिया में उसके मानस में जिन विषेश व्यक्तियों के चित्र उभरते है उनमें गौतम बुद्ध और अषोक का स्थान प्रमुख है वर्तमान का निमंत्रण लेकर जब कवि अतीत के द्वार पर पहुँचता है तो उसे विषेशकर बलषाली मगध अथवा नालंदा और वैषाली की ही याद आती है कवि पाटलिपुत्र की गंगा से पूछता है कि वह कौन सा विषाद है कैसी व्यथा है जिस कारण आज उसके प्रवाह में षिथिलता दृश्टिगोचर हो रही है। गंगा साक्षी है हमारे उस गौरवपूर्ण अतीत की जिसकी तूती संपूर्ण भारत में ही नहीं वरन् विदेषों में भी बोलती थी, गुप्त वंष की गरिमा, अषोक की करूणा, गौतम का षांति सन्देष, लिच्छिवियों की वैशाली सभी की स्मृति उसके मानस में अवष्य ही सुरक्षित होगी। 1935 के बाद की रचित ऐतिहासिक कविताओं में (जो यहाँ संगृहीत है) कवि केवल अतीत के गौरव की स्मृतिमात्र से संतुश्ट नहीं हो जाता, वरन् उनसे प्रेरणा लेकर भारतमाता की गुलामी की बेड़ी को काटने की प्रेरणा भी देता है। कवि का आह्वान है-

"समय माँगता मूल्य मुक्ति का, देगा कौन माँस की बोटी?
पर्वत पर आदर्श मिलेगा खाएँ चलो घास की रोटी।

परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारतभूमि से वह स्पष्ट शब्दों में पूछता है-

ओ भारत की भूमि वंदिनी! ओ जंजीरो वाली!
तेरी ही क्या कुक्षि फाड़कर जन्मी थी वैशाली?"

इतिहास के ये आँसू कवि को कितने प्रिय है हमारे लिए कितने अनमोल है इसका पता हमें इन रचनाओं को पढ़ने के बाद ही लगता है।राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत कवि का आगे काव्य संग्रह धूप और धुआँ का प्रकाषन 1953 में हुआ और इसमें कवि भी 1947 से 1951 तक की रचनाओं का संग्रह है। समीक्ष्य काव्यकृति में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चा के राश्ट्रीय जनजीवन की अभिव्यक्ति है कवि इसके नामकरण के बारे में लिखता है- "स्वराज्य से फूटने वाली आषा की धूप और उसके विरूद्ध जन्मे हुए

असंतोश का धुआँ, ये दोनों ही इन रचनाओं में यथास्थान प्रतिबिंबित मिलेंगे। अतएव जिनकी आँखे धूप और धुआँ दोनों को देख रही हैं। इसके लिए यह नाम कुछ निरर्थक नहीं होगा।"

संग्रह की रचनाओं में स्वतंत्रता, राश्ट्र हित की भावनाएँ तथा बापू और अन्य बलिदानियों के प्रति श्रद्धांजलि के भाव स्पश्ट हुए हैं। कवि को वर्तमान में जो तृशा दिखाई दे रही है उसे वाणी प्रदान की है। इस ग्रंथ के विशय में कवि ने स्वयं लिखा है-

"स्वराज्य से फूटने वाली आषा की धूप और उसके विरूद्ध जन्मे हुये असन्तोश का धुआँ ये दोनो इन रचनाओं में यथा स्थान प्रतिबिम्बित मिलेगी। अतएव जिसकी आँखे धूप और धुआँ देख रही है उसके लिए यह नाम कुछ निरर्थक नहीं होगा।" धूप और धुआँ काव्य संग्रह की रचना स्वतंन्त्रता, राष्ट्र कल्याण, बलिदानियों पर श्रद्धा सेनानी की वीर भावना आदि ज्वलन्त विशयों से परिपूर्ण है। यथा-

"माँ का अंचल है फटा हुआ, इन दो टुकड़ो को सीना है।
देखे देता है कौन लहू, दे सकता कौन पसीना है।"

दिनकर की सोच राष्ट्रवादी सोच है और स्वदेश गौरव तथा स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा है। कवि गाँधी जी की विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनका राष्ट्रवाद और अधिक पुष्ट तथा मजबूत बन गया है, किन्तु वे अहिंसा में विश्वास न करते हुए हिंसा को मूल में रखते हुए कहते हैं शांति और अहिंसा के सिद्धांतो को अपनाता है तो इससे उसकी कायरता ही उजागर होती है। परषुराम की प्रतीक्षा सन् 1962 में भारत-चीन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई वीरता तथा ओज से परिपूर्ण कविताओं का संग्रह है उस समय कवि ने ओजमयी वाणी में इस आपद्धर्म को प्रकट किया है, जो किसी महान राष्ट्रवादी कवि रचनाकार के ही बूते की बात है। गाँधीवाद की उपासना में तत्कालीन सत्ता ने जिस मार्ग का आश्रय लिया कवि उससे संतुष्ट कैसे रह सकता है? अतः उसने यहाँ के वीरों को परशुराम के रूप में देखा तथा कवि ने गाँधीवादी अहिंसा को त्यागकर परशुराम की तरह धर्म और जाति की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण करने का अनुरोध किया-

"चिंतको! चिंतना की तलवार गढ़ो रे!
ऋशियों! कृषान, उद्दीपन मंत्र पढ़ो रे!
योगियों! जगो, जीवन की ओर बढ़ो रे
बंदूको पर अपना आलोक मढ़ो रे!"

कवि परषुराम की प्रतीक्षा काव्य संग्रह में चीन के विरूद्ध पूरे जोर से युद्ध का समर्थन करते है और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सभी कुछ न्यौछावर कर देने तथा अपने आपको बलिदान कर देने की भावना को प्रोत्साहित करते हैं-

"दासत्व जहाँ है, वहीं स्तब्ध जीवन है।
स्वातंत्रय निरंतर समर, सनातन रण है।
स्वातंत्रय समस्या नहीं आज या कल की
जागर्ति तीव्र वह घड़ी-घड़ी, पल-पल की।
कवि आगे यह आकांक्षा प्रकट करता है कि-
तिलक चढ़ा मत और हृदय में हूक दो,
दे सकते हो तो गोली बंदूक दो।"

कवि के अनुसार युद्ध के समय तटस्थ बने रहकर चुप बैठे रहना भी कायरता है। ऐसे तटस्थ और चालाक लोगों को फटकारता हुआ कवि कहता है-

"अब समझा, चुप्पी कदर्यता की वाणी है,
बहुत अधिक चातुर्य आपदाओं का घर है,
दोशी केवल वही नहीं, जो नयनहीन था,
उसका भी है पाप, आँख थी जिसे, किन्तु जो
बड़ी-बड़ी घड़ियों में मौन तटस्थ रहा है।"

दिनकर के काव्य का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि उनका काव्य राष्ट्रीय चेतनाओं से परिपूर्ण है कवि ने शुरूआत ही राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित काव्य से की है तथा अलग-अलग संदर्भो में राष्ट्रीय चेतना को अपने काव्य में दर्शाया है। कवि दिनकर ने अपने युग का प्रतिनिधित्व अपने काव्य में किया है। दिनकर की सोच राष्ट्रवादी सोच है और स्वदेश गौरव तथा स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा है, कवि गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित है किन्तु वे अहिंसा के बल पर नहीं बल्कि हिंसा के बल पर देष को आजाद कराना चाहते है। कवि स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सभी कुछ न्यौछावर कर देने तथा स्वयं को भी बलिदान कर देने की भावना को प्रोत्साहित करते है।

2.7 सारांश :

समकालीन कविताएं दिनकर के युगधर्म, हुंकार और भूचाल से प्रभावित है !": सिद्धेश्वर "पुरोधा की भूमिका का निर्वाह किया है राष्ट्रकवि दिनकर

ने ! " : आराधना प्रसाद पटना :27/09/2021! " राजनीति जब डगमगाती है, तब साहित्य उसे संभाल लेती है ! साहित्य की इस प्रासंगिकता को राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर बखूबी समझते थे ! शायद, यही कारण था कि उन्होंने सौंदर्यशास्त्र की अनुपम भेंट “उर्वशी” का सृजन करते हुए भी, राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत ओजस्वी कविताओं का सृजन खूब जमकर किया ! उन्होंने अपनी काव्य पंक्तियों में कहा कि- “जला अस्थियां बारी-बारी, चिटकाई जिनमें चिंगारी, जो चढ़ गये पुण्यवेदी पर, लिए बिना गर्दन का मोल, कलम, आज उनकी जय बोल। ”

भारतीय युवा साहित्यकार परिषद के तत्वाधान में, फेसबुक के “अवसर साहित्यधर्मी पत्रिका” के पेज पर आयोजित “हेलो फेसबुक कवि सम्मेलन” का संचालन करते हुए संयोजक सिद्धेश्वर ने उपरोक्त उद्गार व्यक्त किया !” ऑनलाइन आयोजित यह कवि सम्मेलन” समकालीन कविता में दिनकर की प्रासंगिकता” विषय पर केंद्रित था ! इस विषय को विस्तार देते हुए सिद्धेश्वर ने कहा कि -” युग धर्म के हुंकार , और भूचाल – बवंडर के ख्वाबों में भरी हुई तरुणाई का नाम है रामधारी सिंह दिनकर ! एक शब्द में कहूं तो ” समकालीन कविताएँ, दिनकर के युगधर्म, हुंकार और भूचाल से प्रभावित है ! ”

इस कवि सम्मेलन की मुख्य अतिथि आराधना प्रसाद और अध्यक्षता निभा रहे “निर्बन्धाया” के संपादक संतोष मालवीय(राजगढ़) ने दिनकर के व्यक्तित्व, और कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि- ” पुरोधा की भूमिका का निर्वाह किया है, राष्ट्रकवि दिनकर ने !”

मुख्य वक्ता अपूर्व कुमार (वैशाली)ने कहा कि-” दिनकर की रचनाएं जितना अनपढ़, मजदूर- किसानों को भाती थी, उतना ही किसी कठिन विषय के शोध के छात्रों को भी। रामधारी सिंह दिनकर वैसे रत्न कवियों में से हैं, जिन्होंने न केवल समकालीन कविता का प्रादुर्भाव काल देखा, बल्कि समकालीन कविता के उज्जवल भविष्य का भी सहज अंदाजा लगा लिया।”

विशिष्ट अतिथि डॉ कुंवर नारायण. सिंह मार्तण्ड (कोलकाता) ने दिनकर की कई ओजस्वी कविताओं का पाठ करने के बाद, अपनी एक गीत प्रस्तुत किया -” तुम डरे नहीं, तुम रुके नहीं, थे काव्य जगत के दिनकर तुम !” दूसरी तरफ, कौशल किशोर ने कहा कि -” दिनकर ओज , हुंकार और राष्ट्रीयता के कवि माने जाते हैं । बत्ती नहीं जो जलाता है, रोशनी नहीं वो पाता है !”. इन संदर्भों को दिनकर बखूबी बखान करते थे !”

डॉ शरद नारायण खरे (म.प्र.)ने कहा कि -" साठोतर कविता और समकालीन कविता को एक मान लेना गलत है। सच तो यह है कि समकालीन कविता वर्तमान का काव्य आंदोलन है, जिसमें अहम् भूमिका निभाया दिनकर ने !"

"हेलो फेसबुक कवि सम्मेलन" का आरंभ मुख्य अतिथि आराधना प्रसाद की मर्मस्पर्शी गजलों से हुआ -" औरों के भी ग़म उठाये ज़िंदगी, ख़ुद को भी ख़ुद से मिलाये ज़िंदगी, दीजिये मुस्कान इक मज़लूम को, तब कहीं ये मुस्कुराये जिंदगी !"

हरिनारायण सिंह हरि (समस्तीपुर)ने – " दिनकर का तो नाम सभी जन लेते हैं, उनके बूते अपनी नैया खेते हैं ! पर दिनकर की आग नहीं क्यों उनमें है, दिनकर जैसा राग नहीं क्यों उनमें है ?"/ कुँवर वीर सिंह "मार्तण्ड " (कोलकाता) ने -" तुम डरे नहीं, तुम रुके नहीं, थे काव्य जगत के दिनकर !"/ ऋचा वर्मा ने – " ईश्वर की अनमोल कृति है नारी, राजनीतिज्ञों के लिए आधी आबादी, दुग्धपान कराए तो मां, कलाइयों को सजाए तो बहन !"/ अलका अस्थाना(लखनऊ) ने -" धूप की घनेरी वातायन, मधुर श्रृंगार से लिप्त !"/ रामनारायण यादव (सुपौल) ने -" आखरी दम तक खड़ा रहता है,वह चुपचाप, चुपचाप सब कुछ सहता !/राज प्रिया रानी ने -" सुरो के तार.उलझ से गए थे, उलझनों की गांठ आजाद करें, जो धूमिल हुए तकरीरों में, नित्य अंशुमाला बरसात करें !"/ अंजू भारती (नई दिल्ली) ने -" मथुरा कृष्ण लिए अवतार, बाजे पैजनिया गोकुल द्वार !"/ सिद्धेश्वर ने-" जब बन जाता है भला चंगा इंसान भेड़िया, तब सड़कें नहीं होतीं, उनके नापाक इरादों को, मंजिल तक पहुंचाने के लिए !" जैसी समकालीन कविताओं का पाठ किया

सिद्धेश्वर के द्वारा प्रस्तुत," सुनो कविता " के अंतर्गत, नागार्जुन की कविता -" जी हां लिख रहा हूं, मगर आप उसे पढ़ नहीं पाओगे !,देख नहीं सकोगे, मैं भी कहां देख पाता हूं ?"/ भगवती प्रसाद द्विवेदी की कविता " बेटियां, इतिहास रचते रहें, कुछ ऐसा करें , खलबली चहुंओर मचती रहे, कुछ ऐसा करें !"/अशोक जैन (गुरुग्राम) के दोहे -" आंखों से बहने लगी जब अश्कों की धार, मन्न ने दिल से तब कहा, क्यों होता बेजार ?, क्यों होता बेजार, संभलना तुझको होगा, मेरा कहना मान, बदलना तुझको होगा !" अनिरुद्ध सिन्हा (मुंगेर)की ग़ज़ल "हमारे हौंसले का कद, तुम्हारे ध्वज से ऊंचा है, तुम्हारा मुल्क एक छोटा सा रोशनदान लगता है !" की सशक्त वीडिओ प्रस्तुति हुई! "

इसके अतिरिक्त दुर्गेश मोहन, सुनील कुमार उपाध्याय, कुमारी मेनका ,अपूर्व कुमार, गोरख प्रसाद मस्ताना, एकलव्य केसरवानी, विमलेश कुमार, मंजू कुमारी,

बीना गुप्ता, घनश्याम प्रेमी, पूनम कतरियार, गजानंद पांडे आदि की भी भागीदारी रही!

निष्कर्ष :

उनकी कृतियों में अलंकार बड़े स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं। मुख्य रूप से उन्होंने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत आदि अलंकारों के प्रयोग किए हैं। वैसे तो **दिनकर** जी की **कविताओं** में वीर रस की प्रचुरता है परंतु श्रृंगार,करुणा आदि रस भी महत्व रूप से विद्यमान हैं।

कुल मिलाकर देखें, तो रामधारी सिंह दिनकर जी की कृतियों में न केवल भावनात्मक विशेषताएँ हैं बल्कि कलात्मक पक्ष भी बहुत सुदृढ़ है।हिंदी काव्य जगत में क्रांति,ओज और प्रेम के सृजक के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय है और उनकी काव्यगत विशेषताएँ अद्वितीय हैं। दिनकर अपने युग के प्रतिनिधि कवि और भारतीय जनजीवन के निर्भीक रचनाकार के रूप में हमेशा हिंदी साहित्य के जगत में मूर्धन्य रहेंगे।

2.8 सन्दर्भ ग्रंथ :

1 रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय
2 दिनकर –हुँकार
3. युग चरण दिनकर – डॉ. सावित्री सिंहा ।
4. दिनकर : वैचारिक क्रांति के परिवेश में - डॉ. पी. आदेश्वर राव ।
5. दिनकर की कविता में विचार तत्व - डॉ. एस. शेषारत्नम ।
6. ऊर्वशी : संवेदना एवं शिल्प - डॉ. वचनदेव कुमार बालेन्दु शेखर तिवारी ।

****

यम . मंजुला

3. कुरुक्षेत्र - छठवाँ सर्ग

उद्देश्य :

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप समझ सकेंगे -

- दिनकरजीनेकर्मकेमहत्त्वकोकैसेप्रभावात्मकढंगसेप्रतिपादितकियाहै।
- युद्ध निंदित एवं क्रूर कर्म है, परन्तु उसका दायित्व किस पर होना चाहिए।
- अधिकार मांगने से नहीं मिलते बल्कि छीने जाते हैं।
- युद्ध एक विध्वंसकारी समस्या है, जिससे त्राण पाने के लिए क्षमा, दया, तप औरत्याग आदि मानवीय मूल्यों को अपनाना पड़ेगा।

इकाई की रूपरेखा :

3.1. परिचय
3.2. व्याख्याइत अंश
3.3. सारांश
3.4. मुख्य शब्दावली
3.5. अपनी प्रगति जांचिएके उत्तर
3.6. अभ्यास हेतु प्रश्न

3.1 परिचय :

'कुरुक्षेत्र' भारतीय संस्कृति के चितेरे, मानवतावादी राष्ट्रकवि 'रामधारी सिंह दिनकर' की प्रबन्धात्मक काव्य-कृति है। उन्होंने अपने युग की विकट परिस्थितियों पर गंभीरतापूर्वक मनन किया है। उनका विचार है कि विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने चाहे आकाश में पक्षी की तरह उड़ना और पानी में मछली की तरह तैरना सीख लिया है, किन्तु उसे धरती पर इंसान की तरह रहना नहीं आया। द्विधा-ग्रस्त लोगों की विचारधाराओं का पारस्परिक टकराव, ईर्ष्या, द्वेष, युद्ध की विभीषिका आदि भयंकर समस्याएँ समस्त विश्व के सामने मुंह बाए खड़ी हैं। दिनकर जी का विचार है कि इन विश्वव्यापी समस्याओं का समाधान करके ही मानव-जाति लोक-कल्याण का स्वप्न संजो सकती है। यह सब न्याय, शांति, सहअस्तित्व और पारस्परिक सद्भाव को सहेजने पर ही संभव हैं। 'कुरुक्षेत्र' का प्रतिपाद्य यही है कि मनुष्य क्षुद्र स्वार्थों को छोड़कर, बुद्धि और हृदय में समन्वय स्थापित करें तथा प्राणार्पण से मानवता के उत्थान में जुट जाए।

3.2. व्याख्यात अंश :

उपहरण, शोषण वही, कुत्सित वही अभियान,
खोजना चढ़ दूसरों के भस्म पर उत्थान;
शील से सुलझा न सकना आपसी व्यवहार
दौड़ना रह-रह उठा उन्माद की तलवार।
द्रोह से अब भी वही अनुराग,
प्राण में अब भी वही फुंकार भरता नागा।

शब्दार्थ : अपहरण = किसी को चोरी-चुपके उठा ले जाना, कुत्सित = घृणित, बुरा, अभियान = आक्रमण,हमला, भस्म = राख, उत्थान = उन्नति, शील = सद्भाव, उन्माद = पागलपन, द्रोह = शत्रुता,अनुराग = प्रेम, नाग = सर्प।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित उनकी प्रसिद्ध काव्यकृति कुरुक्षेत्र केछठे सर्ग से ली गई हैं। इस प्रबंध-काव्य में युद्ध और शांति के कारण और निवारण पर बड़ी गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। इस सर्ग में कवि ने साम्प्रतिक परिवेश की कुत्सित परिस्थितियों का मार्काखेज विवेचन किया है। कवि ने मनुष्य की हिंसक प्रवृत्ति, द्वेषी स्वभाव एवं उसके उन्मादी आचरण का कच्चा चिट्ठा खोल कर रख दिया है। दिनकर जी ने मनुष्य की विषाक्त एवंविध्वंसकारी प्रवृतियों को दर्शाते हुए लिखा है-

व्याख्या :

आज भी मनुष्य जंगली जानवर की हिंसक प्रवृत्ति का शिकार है। वह दूसरों को मार कर उनकेधन-वैभव पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। उसकी यह आदिम प्रवृत्ति आज भी ज्यों की त्यों कायम है। वह किसी भी समस्या को सद्भावपूर्वक सुलझाने का प्रयास नहीं करता, वरन् उन्मादी तलवार के बल पर सर्वत्र अपना अधिकार जमाना चाहता है। आज भी हिंसक पशुताउसके हृदय में आसन लगाए बैठी है। उसके प्राणों में वैमनस्य का विषधर विषैली फुंकार मार रहा है। ऐसी भयावहस्थिति में शांति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

विशेष :

1. यहांकविनेसमाजकोउत्पीड़ितकरनेवालीदुर्भावनापूर्णकटुप्रवृत्तियोंकालेखा-जोखाप्रस्तुतकियाहै। अपहरण, शोषण, आधिपत्य आदि कुप्रवृतियों का चारों और बोलबाला है।

2. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द-चयन से अभिव्यक्ति में निखार आया है।
4. अनुप्रास, विरोधाभास, रूपक, वीप्सा आदि अलंकारों का सुष्ठु संयोजन बहुत सुन्दर बन पड़ा है।

पूर्व युग-सा आज का जीवन नहीं लाचार,
आ चुका है दूर द्वापर से बहुत संसार;
यह समय विज्ञान का, सब भाँति पूर्ण, समर्थ;
खुल गये हैं गूढ़ संसृति के अमित गुरु अर्थ।
चीरता तम को, सँभाले बुद्धि की पतवार,
आ गया है ज्योति की नव भूमि में संसार।

शब्दार्थ –

पूर्व युग = प्राचीन काल, लाचार = विवश, बेबस, समर्थ = सक्षम, गूढ़ संसृति = रहस्यमय संसार,अमित = अपार, गुरु = बड़ा, गहन, तम = अन्धकार, अज्ञान, ज्योति = प्रकाश, नव = नई।

प्रसंग-

प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से उद्धृत है। इस कृति में युद्ध और शान्ति के विविध आयामों को उद्घाटित किया गया है। जबकि इस सर्ग में विश्व के समसामयिक परिवेश को दर्शाया गया है। इन पंक्तियों में वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति को रेखांकित किया गया है।

व्याख्या –

कवि की मान्यता है कि आधुनिक युग का जीवन प्राचीन युग के समान बेबस एवं मजबूर नहीं हैक्योंकि अब यहां द्वापर युग जैसी स्थिति नहीं है। अब विज्ञान का युग है, जिसमें सब प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। वैज्ञानिक सामर्थ्य के कारण संसार के सभी रहस्य उद्घाटित हो चुके हैं तथा विज्ञान ने सृष्टि के अनेक गंभीर अर्थों का भेद पा लिया है। वैज्ञानिक आविष्कारों से अज्ञान का अंधकार मिट गया है तथा चारों ओर ज्ञान की नई किरणों का प्रकाश फैल रहा है। तात्पर्य यह हैकि वैज्ञानिक उन्नति के बल पर मनुष्य दिनोंदिन समृद्धि के सोपान पर चढ़ता जा रहा है।

विशेष –

1. प्रदत्त पंक्तियों में कवि ने वर्तमान युग की वैज्ञानिक उन्नति को दर्शाने का प्रयास किया है। वैज्ञानिकविकास से मनुष्य शक्तिसम्पन्न एवं बुद्धिमान होता जा रहा है।
2. सटीकशब्द -चयनसेअभिव्यक्तिसम्प्रेषणीयहोगईहै।
3. उपमा, रूपक एवं अनुप्रास अलंकार सहज ही देखे जा सकते हैं।
4. प्रतीकात्मक शब्दावली से प्रभविष्णता और भी बढ़ गई है।

आज की दुनिया विचित्र, नवीन;
प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन ।
हैं बँधे नर के करों में वारि, विद्युत, भाप,
हुक्म पर चढ़ता-उतरता है पवन का ताप।
हैं नहीं बाकी कहीं व्यवधान,
लाँघ सकता नर सरित्, गिरि, सिन्धु एक समान।

शब्दार्थ : विचित्र = अद्भुत, निराला, नवीन = नया, सर्वत्र = सब जगह, आसीन = आरूढ़, मोजूद, नर = मनुष्य, करों में = हाथों में, वारि = पानी, विद्युत = बिजली, भाप = वाष्प, हुक्म = आज्ञा, आदेश, पवन = वायु, व्यवधान = बाधा, सरित् = नदी, गिरि = पहाड़, सिन्धु = समुद्र।

प्रसंग :

प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' के षष्ठ सर्ग से लिया गया है। इस कृति में युद्ध और शांति से सम्बद्ध विविध स्थितियों पर चिन्तन-मनन किया गया है। प्रदत्त पद्यांश में मानव-जाति द्वारा अर्जित वैज्ञानिक आविष्कारों के चमत्कार को रेखांकित किया गया है। संसार में वैज्ञानिक उन्नति से आए परिवर्तन को दर्शाते हुए कवि कहता है कि–

व्याख्या :

आज का संसार पहले वाला संसार नहीं है। यह एकदम अद्भुत एवं नया है। आज के मानव ने प्रकृति को पूर्णरूप से जीत लिया है। सब जगह उसकी विजय पताका फहरा रही है। प्रकृति की समस्त निधियों पर मनुष्य का आधिपत्य है। आज उसने पानी, बिजली, वाष्प आदि को पूर्णतः अपने बस में कर लिया है। आज वायु की गति एवं गर्मी मनुष्य की आज्ञानुसार ही बढ़ती और घटती है। अब मनुष्य की राह में कहीं भी किसी प्रकार की कोई बाधा नहीं है। अब वह नदी,

पर्वत और समुद्र को सुविधापूर्वक पार कर सकता है। भाव यह है कि वह विज्ञान के बल पर कहीं भी उड़ान भर सकता है।

विशेष -

1.भाव यह है कि जैसे रावण ने सभी (जल, वायु, अग्नि आदि) देवताओं को अपने बस में कर रखा था, वैसे ही आज मनुष्य ने प्रकृति के सभी उपादानों को अपने बस में कर रखा है।

2. भाषा सरल, तरल एवं भावनुकूल है।

3. सटीक शब्द -चयन बड़ा प्रभावात्मक बन पड़ा है।

4. अलंकारों का प्रयोग एवं वर्णनात्मक काव्य-शैली पाठक को अनायास ही प्रभावित करती है।

सीस पर आदेश कर अवधार्य,
प्रकृति के सब तत्त्व करते हैं मनुज के कार्य ।
मानते हैं हुक्म मानव का महा वरुणेश,
और करता शब्दगुण अम्बर वहन संदेश।
नव्य नर की मुष्टि में विकराल
हैं सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल ।

शब्दार्थ : सीस = सिर, आदेश = आज्ञा, अवधार्य = धारण करके, तत्त्व = उपादान (वायु, जल, अग्नि आदि), मनुज = मनुष्य, हुक्म = आज्ञा, वरूणेश = जल के देवता वरूण, क्षण = पल, शब्दगुण = आवाज, वाणी, अम्बर = आकाश, वहन = धारण करना, मुष्टि = मुट्ठी, नव्य नर = आधुनिक मनुष्य, विकराल = भयंकर, दिक्काल = दिशा और समय ।

प्रसंग :

प्रस्तुत पद्यांश महाकवि रामधारी सिंह दिनकर की लेखनी से निसृत प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' केछठे सर्ग से लिया गया है। इस पुस्तक में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की स्थिति का विश्लेषणात्मक विवेचन किया है। इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति पर मनुष्य के जयघोष को निनादितकिया है। प्रकारान्तर से प्रकृति को मनुष्य की चेरी के रूप में दर्शाया गया है।

व्याख्या :

कवि के मतानुसार मनुष्य ने प्रकृति पर पूर्णतः अपना अधिकार जमा लिया है क्योंकि प्रकृति के सभीउपादान मनुष्य के आदेश को शिरोधार्य करके उसके सभी कार्यों को पूर्ण करते हैं। यहां तक कि जल-देवता वरुण भी मनुष्य के आदेश

का पालन करता है। आकाश भी वायु तरंगों में संजोकर मनुष्य के सन्देश को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाता है। सम्प्रति मनुष्य की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वह प्रति पल दिग्दिगान्त और महाकल को भी अपनी उंगली पर नचाता है। भावार्थ यह है कि प्रकृति का प्रत्येक अंग-उपांग मनुष्य के आदेश को मानने के लिए तत्पर दिखाई पड़ताहै।

विशेष

1. कवि कहता है कि वैज्ञानिक प्रगति के बल पर मनुष्य ने प्रकृति की सभी शक्तियों पर अपना अधिकारजमा लिया है।
2. भाषा, सरल, तरल एवं भावानुकूल है।
3.सटीक शब्द -चयन से अभिव्यक्ति प्रभावात्मक हो गई है।
4. मानवीकरण एवं दृष्टान्त अलंकारों का सम्यक् संयोजन है।

यह प्रगति निस्सीम ! नर का यह अपूर्व विकास!
चरण-तल भूगोल! मुट्ठी में निखिल आकाश!

शब्दार्थ : प्रगति = उन्नति, निस्सीम = असीम, अपार, अपूर्व = अदभुत, चरण-तल = पैरों के नीचे, निखिल=सम्पूर्ण, अखिल, अखण्ड।

प्रसंग :

प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र से उद्धत कियागया है। ये पंक्तियां कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग की शोभा बढ़ा रही हैं। कवि मनुष्य की अद्भुत वैज्ञानिक उन्नति से अभिभूत है। उसने समस्त ब्रह्माण्ड में अपना एकछत्र राज्य स्थापित कर लिया है। तभीतो कवि कहता है कि –

व्याख्या :

मनुष्य की वैज्ञानिक उन्नति का कोई ओर-छोर नहीं, वह अपरिमेय एवं असीम है। मनुष्य की यहउन्नति निश्चय ही अद्भुत एवं अद्वितीय है। उसने समस्त भूमण्डल को अपने बस में कर लिया है, अतः धरती उसकी चरण-रज को अपने मस्तक पर धारण करती है। सारा आकाश उसकी मुट्ठी मेंहै। सर्वत्र उसी का बोलबाला है।

विशेष :

1. वैज्ञानिक उन्नति का चरमोत्कर्ष दर्शाया गया है।
2. मुहावरेदार भाषा से भावों की प्रांजलता बढ़ गई है।
3. एक-एक शब्द विशेष भाव से गर्भित है।

4. तत्सम और तद्भव शब्दों का मंजुल मेल प्रशंसनीय है।

किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छुट कर पीछे गया है रह हृदय का देश
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार ।

शब्दार्थ :

मस्तिष्क = दिमाग, बुद्धि निःशेष = सम्पूर्ण, हृदय = दिल देश = स्थान, नर = मनुष्य, नित्य = सदा,नूतन = नया, बुद्धि का त्यौहार = बौद्धिक विकास पर प्रसन्नता, चीत्कार = हाहाकार, वेदना सेचिल्लाना।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां महाकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से लीगई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति के सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। इन पंक्तियों में दर्शाया गया है कि आज के मानव के आत्मोज पर बुद्धि की गुलकारियांछा गई हैं, वैज्ञानिक उन्नति ने उसे नितान्त हृदयहीन बना छोड़ा है।

व्याख्या :

कवि का कथन है कि वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ मनुष्य की बुद्धि ही बढ़ती रही, उसका हृदयइस दौड़ में पिछड़ गया । मनुष्य निरन्तर वैज्ञानिक उत्कर्ष को त्योहार की तरह मनाने में तल्लीन होता रहा, उसने हृदय पक्ष की पूर्णतः अवहेलना कर दी। नए-नए आविष्कार उसकी बुद्धि को तो उत्फुल्ल करते रहे पर हृदयगत भावों की उपेक्षा हाती रही। मनुष्य के मन में जो देवत्व की भावना थी वह उत्पीड़ित होकर हाहाकार करने लगी। अर्थात् मनुष्य के हृदय से दया, ममता, प्रेम, सदाचार आदि मानवीय मूल्य निरन्तर नदारद होते जा रहे हैं।

विशेष :

1. कवि की मान्यता है कि वैज्ञानिक उपलब्धियों की आड़ में मनुष्य के बौद्धिक विकास ने हृदय की कोमलभावनाओं का गला घोंट डाला है।
2.भाषा सरल एवं भावानुकूल है।
3. संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग से भावाभिव्यक्ति में गंभीरता आ गई है।
4. अनुप्रास एवं रूपक अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है।

चाहिए उनको न केवल ज्ञान,
देवता हैं माँगते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान,

मोम-सी कोई मुलायम चीज,
ताप पाकर जो उठे मन में पसीज-पसीज;
प्राण के झुलसे विपिन में फूल कुछ सुकुमार;
ज्ञान के मरु में सुकोमल भावना की धार;

शब्दार्थ :

स्नेह = प्रेम, बलिदान = त्याग, मुलायम = कोमल, ताप = गर्मी, पसीज-पसीज = पिंघल-पिंघल, झुलसे = जले हुए, विपिन = बाग, सुकुमार = कोमल, मरु = रेगिस्तान, धार = धारा।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की संभावित स्थितियों का विशद विवेचन किया है। यहां कवि कहना चाहता है कि मनुष्य को सुखद जीवन जीने के लिए बुद्धि और हृदय के समन्वय की आवश्यकता है। केवल बुद्धि (ज्ञान) के सहारे जीवन की गाड़ी नहीं चलसकती। इसके लिए हृदय का स्नेह (तेल) भी नितान्त आवश्यक है।

व्याख्या :

मनुष्य-जीवन में केवल ज्ञान ही यथेष्ट नहीं है। इसके सम्यक् संचालन के लिए प्रेम और त्यागकी भावना का होना भी आवश्यक है। मनुष्य के हृदय में समाहित मोम जैसी भावनाओं का उत्फुल्ल होना जरूरी है। त्याग और तप जैसे गुण मनुष्य की भावनाओं को स्निग्ध एवं सुकोमल बना देते हैं, जिससे जीवन के उजड़े उद्यान में बहार आ जाती है, फूल खिल उठते हैं। कोमल भावनाओं के प्रवाह से ज्ञान के रेगिस्तान में सुरभीले फूल मुस्कराने लगते हैं। भावार्थ यह है कि बुद्धि से खिन्न नीरस जीवन में खुशियों का संचार करने के लिए हृदय की कोमल भावनाओं का साहचर्यअत्यावश्यक है।

विशेष:

1. बुद्धिऔरहृदयकेसमन्वयसेजीजीवनसुखदबनसकताहै। ये दोनों जीवन की गाड़ी के पहिए हैं।
2. भाषा भावानुकूल सरल एवं तरल है।
3. अनुप्रास, रूपक, उपमा, वीप्सा आदि अलंकार अभिव्यक्ति के सौन्दर्य को बढ़ा रहे हैं।
4. बुद्धि और हृदय की तरह विचार और भावों का सुन्दर समन्वय है।

चाँदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुसकान;
नींद में भूली हुई बहती नदी का गान ;
रंग में घुलता हुआ खिलती कली का राज;
पत्तियों पर गूंजती कुछ ओस की आवाज;
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तस्वीर;
फूल की, रस में बसी-भीगी हुई जंजीर ।

शब्दार्थ : चाँदनी = रोशनी, रागिनी = संगीत से भरा गीत, भोर = प्रातःकाल, मुसकान = मुस्कराहट, गान = गाना, राज = रहस्य, दर्द = पीड़ा, तस्वीर = चित्र, जंजीर = शृंखला ।

प्रसंग -

प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से लिया गया है। इस रचना में विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर विचार-मंथन किया गया है। यहां कवि ने बुद्धि-विलास की अपेक्षा हृदय की कोमल भावनाओं को रेखांकित करने का प्रशस्य प्रयास किया है।

व्याख्या-

आज मनुष्य को स्निग्ध चाँदनी रात की संगीतात्मक स्वरलहरियों की आवश्यकता है। प्रातः काल जैसी मधुर मुस्कान भी उसे चाहिए अर्थात् गीत-संगीत से सजी चांदनी रातें और हंसता - मुस्कराता सवेरा मनुष्य के जीवन में खुशियों का आधान कर सकता है। मस्ती में भरी कल-कल निनादिनी सरिता का मधुर संगीत मनुष्य की हृदय-तंत्री को झंकृत कर सकता है। चटक कर फूलबनती कलियों के रंग का रहस्य और पत्तियों पर सुशोभित प्रातःकालीन ओस की चमकीली बून्दें मनुष्य की सब पीड़ाओं का उपचार कर देती हैं। यही नहीं, आस-पास के पीड़ितों की आँखो से बहने वाले आँसुओं से भी उसके हृदय में संवेदना का ज्वार उमड़ना चाहिए। फूलों की महक और आकुल अन्तर से निकली टीस के प्रति उसे संवेदनशील होना चाहिए।

विशेष -

1.कवि का कहना है कि मनुष्य को अपने परिवेश के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। दीन-दुःखियों के आँसू पोंछ कर ही मनुष्य वास्तविक प्रसन्नता का अनुभव का सकता है।

2. भावाभिव्यक्ति दार्शनिकता से कुछ बोझिल हो गई है।

3.अनुप्रास, मानवीकरण, उल्लेख आदि अलंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है।
4.इन पंक्तियों में छायावाद की प्रवृत्ति झलकती है।

धूम, कोलाहल, थकावट धूल के उस पार,
शीत जल से पूर्ण कोई मन्दगामी धार;
वृक्ष के नीचे जहाँ मन को मिले विश्राम,
आदमी काटे जहाँ कुछ छुट्टियाँ, कुछ शाम ।
कर्म-संकुल लोक-जीवन से समय कुछ छीन,
हो जहाँ पर बैठ नर कुछ पल स्वयं में लीन;

शब्दार्थ : धूम = धुआं, कोलाहल = शोर, शीत= शीतल, मन्दगामी = धीरे-धीरे बहने वाली, धार = धारा, वृक्ष = पेड़, विश्राम = आराम, कर्म-संकुल = गोरख धंधे में फंसा हुआ, छीन = हथियाना, नर = मनुष्य ।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के षष्ठ सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में विश्वव्यापी युद्ध और शांति की समस्या पर विशद विश्लेषण एवं विवेचन किया गया है। इन पंक्तियों में बताया गया है कि मनुष्य उन्नति की आपाधापी को छोड़कर प्रकृति की गोदी में कुछ समय गुजार कर अपने जीवन में सुख-शांति ला सकता है।

व्याख्या:

मनुष्य जीवन के गोरख धंधों में फंसा रहने के कारण बहुत दुखी है। वैज्ञानिक उन्नति के कारण वह धुएं, शोर और धूल-मिट्टी में सना थकावट अनुभव कर रहा है। अतः इस व्यस्त जीवन से कुछ पल बचा कर उसे शीतल मन्द पवन और कल-कल निनादिनी सरिता के कूलों पर आराम करने की आवश्यकता है। वृक्षों की ठण्डी छाया में उसके मन को सकुन मिल सकता है जीवन की आपाधापी से छुटकारा पाकर उसे कुछ समय प्रकृति की गोदी में बैठकर बिताना चाहिए जहां दीन-दुनिया के चक्कर से निजात पाकर वह कुछ पल चैन से बिता सके।

विशेष-

1.वैज्ञानिक युग में मनुष्य यंत्रवत् कार्यरत रहता है। अतः उसे मन की शांति के लिए एकान्त प्रकृति की गोद में ही विश्राम करना चाहिए।
2. भाषा सरल एवं भावानुकूल है।
3. जीवन में क्रियशीलता के साथ-साथ मनोरंजन की भी महती आवश्यकता है ।

पर धरा सुपरीक्षिता, विश्लिष्ट स्वाद-विहीन,

यह पढ़ी पोथी न दे सकती प्रवेग नवीन ।
एक लघु हस्तामलक यह भूमिमंडल गोल,
मानवों ने पढ़ लिये सब पृष्ठ जिसके खोल ।

शब्दार्थ : धरा = धरती, सुपरीक्षिता = जिसकी ठीक प्रकार परीक्षा ली जा चुकी हो, विश्लिष्ट = वियुक्त,स्वाद = विहीन – जिसमें कोई स्वाद न हो, पोथी – पुस्तक, प्रवेग = उत्साह, नवीन = नया, लघु = छोटा, हस्तामलक = हाथ पर रखा हुआ आंवला, भूमिमंडल गोल = गोलाकार पृथ्वी, पृष्ठ = पन्ने, खोल = खोलकर ।

प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' से ली गई हैं। इस पुस्तक के छठे सर्ग में इन पंक्तियों का विशिष्ट स्थान है। इस रचना में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की विकट समस्या का विश्लेषण एवं विवेचन किया है। यहां बताया गया है कि अपनी बुद्धि के बल पर मनुष्य सर्वज्ञ बन गया है। उससे इस पृथ्वी का कोई भी रहस्य छुपा हुआ नहीं है।

व्याख्या -

इन पंक्तियों में आज के मानव की वैज्ञानिक उन्नति को उदघाटित किया गया है। मनुष्य ने धरती रूपी पुस्तक के एक – एक पृष्ठ को अच्छी प्रकार से पढ़ लिया है। अब पृथ्वी पर ऐसी कोई बात नहीं, जिसे वह न जानता हो। हाथ पर रखे आंवले की तरह उसे पृथ्वी की हर वस्तु साफ दिखाई देती है। वैज्ञानिकों ने धरती के प्रत्येक रहस्य को भली भाँति जान लिया है।

विशेष

1. यहाँकविनेमनुष्यकेबुद्धिकौशलएवंउसकीवैज्ञानिकउपलब्धियोंकोरेखांकितकियाहै।
2. सटीक शब्द-चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हो गई है।
3. अर्थ गांभीर्य के साथ शब्दों की क्लिष्टता थोड़ी अखरती है।
4. अनुप्रास एवं उपमा अलंकारों का सुष्ठ, प्रयोग हुआ है।

किन्तु, नर-प्रज्ञा सदा गतिशालिनी, उद्दाम
ले नहीं सकती कहीं रुक एक पल विश्राम ।
यह परीक्षित भूमि, यह पोथी पठित, प्राचीन
सोचने को दे उसे अब बात कौन नवीन?
यह लघुग्रहभूमिमण्डल, व्योम यह संकीर्ण,

चाहिए नर को नया कुछ और जग विस्तीर्ण ।

शब्दार्थ : नर-प्रज्ञा = मनुष्य की बुद्धि, गतिशालिनी = गतिशील, उद्दाम = प्रचण्ड, तेज, विश्राम = आराम,परीक्षित = जिसकी परीक्षा की जा चुकी हो, पोथी = पुस्तक, पठित = पढ़ी हुई, प्राचीन = पुरानी, नवीन = नई, लघुग्रह = छोटा-सा नक्षत्र, भूमिमंडल = धरती, व्योम = आकाश, संकीर्ण = छोटा,संकुचित, जग = दुनिया, विस्तीर्ण = विशाल ।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियों राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य‘कुरुक्षेत्र’ के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी समसामयिक युद्ध और शांति की विकट समस्या पर गंभीरता पूर्वक चिन्तन किया है। यहाँ कवि बताना चाहता है कि मनुष्य ने विज्ञान के बल पर पृथ्वी के सब रहस्य जान लिए हैं, आकाश भी अब उसे छोटा लगने लगा है। अब उसकी चाह कुछ और नया एवं विस्तृत ज्ञान प्राप्त करन की है।

व्याख्या-

कवि का कथन है कि मनुष्य की गतिशील बुद्धि कभी विश्राम करना नहीं चाहती, वह चौगुने चाव से निरन्तर नई - नई उपलब्धियों को पाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। उसने इस धरती के सभी रहस्यों को जान लिया है। अब तो उसे यह धरती पढ़ी हुई पुरानी पुस्तक-सी लगती है। पृथ्वी के साथ – साथ उसने अन्तरिक्ष का भी खूब निरीक्षण - परीक्षण कर लिया है। अब तो उसकी चाह है कि यह चाँद-सितारों से आगे किसी और बड़े उपग्रह की खोज करे।

विशेष -

1. कवि का आशय है कि मनुष्य की ज्ञान-पिपासा निरन्तर बढ़ती ही रहती है। वह अपनी वर्तमान स्थिति से कभी सन्तुष्ट नहीं होता।
2. भाषा सरल एवं भावानुकूल है
3. अनुप्रास, रूपक एवं प्रश्न अलंकारों का सुष्टु प्रयोग किया गया है ।
4. मनुष्य की प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण सहज ही देखा जा सकता है।

घुट रही नर-बुद्धि की है साँस;
चाहती वह कुछ बड़ा जग, कुछ बड़ा आकाश ।
यह मनुज, जिसके लिए लघु हो रहा भूगोल,
अपर-ग्रह-जय की तृषा जिसमें उठी है बोल।
यह मनुज विज्ञान में निष्णात,

जो करेगा, स्यात्, मंगल और विधु से बात।

शब्दार्थ-

नर-बुद्धि = मनुष्य की बुद्धि, साँस = प्राण, जग = संसार, मनुज = मनुष्य, लघु = छोटा, भूगोल = पृथ्वी, अपर-ग्रह-जय = दूसरे ग्रहों पर विजय प्राप्त करना, तृषा = प्यास निष्णात = पारंगत, विधु = चन्द्रमा।

प्रसंग -

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस रचना में कवि ने वर्तमान युग में विश्वव्यापी युद्ध और शांति की समस्या पर गहन विचार किया है। आज का मानव वर्तमान वैज्ञानिक उन्नति से उकता गया है, उसे अपनी उपलब्दियों छोटी एवं तुच्छ लगने लगी हैं। वह इस क्षेत्र में और ऊँची उड़ान भरना चाहता है।

व्याख्या-

विज्ञान के वर्तमान युग में मनुष्य की बुद्धि की सांसे घुटने लगी हैं। उसके लिए यह दुनिया छोटी पड़ती जा रही है। उसे और अधिक व्यापक संसार तथा इससे भी अधिक विस्तृत नभ की आवश्यकता है। आज के मनुष्य ने इस धरती के तो सारे राज जान लिए हैं। अब वह अन्य ग्रहों - उपग्रहों पर विजय पाने की अभिलाषा करता है। वैज्ञानिक उन्नति में पारंगत मनुष्य अब मंगल और चन्द्र ग्रहों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। अब उसकी मंगल और चन्द्र-विजय अभियान की तैयारी है।

विशेष-

1. कवि भविष्य - द्रष्टा होता है। संभवतः दिनकर जी ने बहुत वर्ष पहले ही चन्द्र एवं मंगल ग्रहों पर विजय - अभियान का स्वप्न संजो लिया था।
2. तत्सम एवं तद्भव शब्दों के मंजुल - मेल से भावाभिक्ति में सम्प्रेषणीयता आ गई है।
3.अनुप्रास, रूपक एवं मानवीकरण अलंकारों का सुन्दर संयोजन हुआ है।
4. मनुष्य की ज्ञान – पिपासा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण देखते ही बनता है।

वह मनुज, ब्रह्माण्ड का सबसे सुरम्य प्रकाश,
कुछ छिपा सकते न जिससे भूमि या आकाश।
यह मनुज, जिसकी शिखा उद्दाम;
कर रहे जिसको चराचर भक्तियुक्त प्रणाम।
यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार;

ज्ञान का, विज्ञान का, आलोक का आगार ।

शब्दार्थ : मनुज = मनुष्य, ब्रह्माण्ड = सृष्टि, सुरम्य = सुन्दर, शिखा = चोटी, उद्दाम = प्रचण्ड, चराचर = जड़ चेतन सृष्टि = संसार, भक्तियुक्त = भक्ति के साथ, शृंगार = सौन्दर्य, आलोक = प्रकाश, आगार = भण्डार।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियाँ राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने समसामयिक विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर बेबाक विचार किया है। कवि की मान्यता है कि आज का मानव सृष्टि का सिरमौर है। सर्वत्र उसी की कीर्ति की किरणें विकीर्ण हो रही हैं। उसका ज्ञान अपरिमित है। सब उसके सामनेनतमस्तक हैं।

व्याख्या :

आज मनुष्य संसार का सुन्दरतम प्राणी है। उसके ज्ञान की ज्योति से सारा संसार जगमगा रहा है। भूमण्डल एवं अन्तरिक्ष का कोई रहस्य उससे छुपा हुआ नहीं है। आज मनुष्य उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर सुशोभित है। संसार के जड़-चेतन सभी पदार्थ उसको सादर नमस्कार करते हैं। अपने बुद्धिकौशल से ज्ञान और विज्ञान का अजस स्रोत होने के कारण वह समस्त संसार की शोभा बढ़ा रहा है।

विशेष:

1. मनुष्य को महिमामण्डित करते हुए कविवरसुमित्रानन्दनपन्त ने भी तो यही कहा है – सुन्दर हैं सुमन, विगह सुन्दर।मानव तुम सब से सुन्दरतम।
2. सहज, सरल भाषा भावानुकूल है।
3. अनुप्रास, रूपक एवं मानवीकरण अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ हैं ।
4. शब्द-चयन में कवि ने विशेष सूझबूझ का परिचय दिया है।

पर, सको सुन तो सुनो, मंगल-जगत के लोग!
तुम्हें छूने का रहा जो जीव कर उद्योग,
वह अभी पशु है; निरा पशु, हिंस्र, रक्त-पिपासु,
बुद्धि उसकी दानवी है स्थूल की जिज्ञासु ।
कड़कता उसमें किसी का जब कभी अभिमान,
फुंकने लगते सभी हो मत्त मृत्यु-विषाण।

शब्दार्थ:

मंगल – जगत = मंगल ग्रह, उद्योग = परिश्रम, हिंसा = खूखार, निरा = पूरा, रक्त - पिपासु = खून का प्यास, दानवी = राक्षसी, स्थूल = मोटा, जिज्ञासु = जानने का इच्छुक, अभिमान = घमण्ड, मत्त = मस्त, मृत्यु-विषाण = मौत का साज।

प्रंसग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गंभीरता पूर्वक विचार किया है। इन पंक्तियों में मनुष्य की खूखार राक्षसी प्रवृत्ति का प्रतिपादन किया गया है। मनुष्य पृथ्वी पर अपने साम्राज्य से सन्तुष्ट नहीं है, वह तो मंगल ग्रह पर भी धावा बोलने के लिए कटिबद्ध है।

व्याख्या:

आज का मनुष्य अपनी बौद्धिक उन्नति के नशे में चूर है वह मंगल- ग्रह पर बसने वाले लोगों को ललकार कर कह रहा है कि सावधान हो जाओ अब हम मंगल ग्रह पर अपना अधिकार जमाने वाले हैं। खूखार पशु की भाँति रक्त पीने को लालायित हैं। उसकी राक्षसी बुद्धि बड़ी-बड़ी वस्तुओं को जानने के लिए बेकरार है। वह अपने घमण्ड में चूर होकर मृत्यु के ताण्डव का शंखनाद करने के लिए उद्धत है।

विशेष :

1. यहां कवि ने मनुष्य की हिंसक पाशविक प्रवृत्ति को उद्घाटित किया है।
2. सरल भाषा भावानुकूल है।
3. सटीक शब्द- चयन कवि के व्यापक ज्ञान का परिचायक है।
4. अनुप्रास एवं मानवीकरण अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

यह मनुज ज्ञानी, श्रृंगालों, कुक्कुरों से हीन
हो, किया करता अनेकों क्रूर कर्म मलीन।
देह ही लड़ती नहीं, हैं जूझते मन-प्राण,
साथ होते ध्वंस में इसके कला-विज्ञान।
इस मनुज के हाथ से विज्ञान के भी फूल,
वज्र होकर छूटते शुभ धर्म अपना भूल।

शब्दार्थ: मनुज = मनुष्य, शृगालों = गीदड़ों, कुक्कुरों = कुत्तों, क्रूर = बर्बर, मलीन = गन्दे, बुरे, देह = शरीर,जूझते = लड़ते, ध्वंस = विनाश, वज्र = कठोर।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य कुरुक्षेत्र के छठेसर्ग से ली गई हैं। इस काव्यकृति में साम्प्रतिक संसार की युद्ध और शांति सम्बन्धी ज्वलन्त समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है। यहाँ बताया गया है कि आधुनिक नर पिशाच बन गया है। वह पशुओं से भी अधिक हिंसक हो कर सब कुछ नष्ट कर देना चाहता है।

व्याख्या :

कवि कहता है कि आज का तथाकथित बुद्धि-मान मनुष्य गीदड़ तथा कुत्तों से भी नीच बन गया है। वह गन्दे से गन्देनीचतापूर्ण बर्बर कार्य करने में लगा हुआ हैं। वह शरीर से ही नहीं अपितु मन - वचन- कर्म से कला और विज्ञान की उन्नति पर पानी फेरने में जुटा हुआ है। मनुष्य ने वैज्ञानिक विकास से मानवता की सेवा के लिए जो आविष्कार किए थे उन्हें अब विध्वंशकारी अस्त्रों के रूप में मानवता को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। आज का मनुष्य विज्ञान के वरदान को अभिशाप बनाने पर तुला हुआ है।

विशेष :

1. आज का धर्मविहीन मनुष्य वैज्ञानिक आविष्कारों को मानव – कल्याण की अपेक्षा मानवता को नष्ट करने के लिए प्रयुक्त कर रहा है।
2. सटीकशब्द -चयन से भावाभिव्यक्ति जीवन्त बन पड़ी है।

3.भाषा सरल एवं प्रभावात्मक है।

4. अनुप्रास, रूपक एवं विशेषोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

यह मनुज, जो ज्ञान का आगार!
यह मनुज, जो सृष्टि का श्रृंगार!
नाम सुन भूलो नहीं, सोचो-विचारो कृत्य;
यह मनुज, संहार-सेवी वासना का भृत्य ।
छद्म इसकी कल्पना, पाषण्ड इसका ज्ञान,
यह मनुष्य मनुष्यता का घोरतम अपमान।

शब्दार्थ : आगार = भण्डार, सृष्टि = संसार, शृंगार = शोभा, कृत्य = कार्य, संहार – सेवी = मारकाट मचाने वाली, वासना = इच्छा, प्रवृति, भृत्य = सेवक,

छद्म = छुपी हुई, कपटपूर्ण, पाषण्ड = पाखण्ड, घोरतम = भयंकर, अपमान = अनादार।

प्रसंग :

यह पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्यकुरूक्षेत्र के छठे सर्ग से अवतरित है। इस कृति में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर अपने विचार व्यक्ति किए हैं। यहां बताया गया है कि संसार की शोभा कहा जाने वाला आज का मनुष्य पूरा पाखण्डी एवं मानवता के नाम पर कलंक है। वह अपने कर्त्तव्य को पूरी तरह भूल गया हैं।

व्याख्या :

आज का मानव जो अमित ज्ञान का भण्डार है तथा जो संसार को सुशोभित करता है, उसके नाम पर ध्यान मत दो, यह सोचो कि वह काम कैसे करता है। अब वह पूरी तरह विनाशकारी प्रवृत्तियों का सेवक बन गया है। अब उसके विचार छल - कपट से भरे हैं तथा उसका ज्ञान थोथा हो गया है। अब उसे मानव कहना, मानवता का भयंकर अपमान है, निरादर है। भावार्थ यह है कि आज का मनुष्य, जाति, धर्म सम्प्रदायों की केंचुली धारण करके मानवता के मूलमंत्र को भूल बैठा है। यह मानवता का घोर तिरस्कार नहीं, तो और क्या है?

विशेष -

1. यहांकविनेअधुनातनमानवकेदंभपूर्णआचरणकाकच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है।
2. साम्प्रतिक मनुष्य भोग-विलास और विध्वंसकारी, मानवता – विरोधी गतिविधियों में लगा हुआ है।
3. सटीक शब्द - चयन से भावाभिव्यक्ति सशक्त हो गई है।
4. अनुप्रास, उल्लेख एवं विषम अलंकारों का सुष्टु प्रयोग हुआ है।

जो जीव बुद्धि-अधीर
तोड़ना अणु ही, न इस व्यवधान का प्राचीर;
वह नहीं मानव; मनुज से उच्च, लघु या भिन्न
चित्र-प्राणी है किसी अज्ञात ग्रह का छिन्न।
स्यात्, मंगल या शनिश्चर लोक का अवदान,
अजनबी करता सदा अपने ग्रहों का ध्यान ।

शब्दार्थ : बुद्धि-अधीर = अस्थिर बुद्धि वाला, व्यवधान = बाधा, प्राचीर = दीवार, उच्च = ऊँचा, लघु = छोटा, भिन्न = अलग, चित्र-प्राणी = मनुष्य का

चित्र, अज्ञात = अनजाना, ग्रह = नक्षत्र, छिन्न = टूटा हुआ, स्यात् = शायद, अवदान = देन, सौगात।

प्रंसग :

प्रस्तुत पंक्तियां हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति के रचयिता राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर हैं। यहाँ बताया गया है कि जो अस्थिर-बुद्धि व्यक्ति ऊँच-नीच के आधार पर मानव - के बीच अन्तर करता है, वह मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है।

व्याख्या :

कवि कहता कहता है कि जिस व्यक्ति ने विज्ञान के बल पर अणु-परमाणु का ज्ञान प्राप्त करलिया, मनुष्य के मार्ग में आने वाली बाधाओं का निराकरण कर दिया और मनुष्य-मनुष्य के बीच वर्ग-भेद की खाई खोद दी, वह व्यक्ति मानव नहीं कहला सकता। वह तो किसी अजाने ग्रह, संभवतः मंगल या शनि ग्रह के मनुष्य का चित्र हो सकता है। कवि की धारणा है कि ऐसा संवेदनहीन प्राणी मंगल अथवा शनि से रास्ता भटक कर पृथ्वीलोक में आ गया है। वह अपरिचितलोक का आदर्शहीन व्यक्ति मानव कहलाने का अधिकारी नहीं है।

विशेष :

1. कवि कहना चाहता है कि संवेदना-शून्य व्यक्ति प्राणी तो है पर उसे मानव नहीं कहा जा सकता क्योंकिमानव तो वह है जिसके हृदय में मानवता के प्रति प्यार हो, जो ऊँच - नीच की संकीर्ण दीवारों को तोड़ चुका हो।
2. सटीकशब्द-चयनसेअभिव्यक्तिमेंप्रभविष्णुताआईहै।
3. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है।
4. अनुप्रास, उल्लेख एवं अपहनुति अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

रसवती भू के मनुज का श्रेय,
यह नहीं विज्ञान, विद्या-बुद्धि यह आग्नेय;
विश्व-दाहक, मृत्यु-वाहक, सृष्टि का संताप,
भ्रान्त पथ पर अन्ध बढ़ते ज्ञान का अभिशाप।
भ्रमित प्रज्ञान का कुतुक यह इन्द्रजाल विचित्र,
श्रेय मानव के न आविष्कार ये अपवित्र।

शब्दार्थ : रसवती = रस से परिपूर्ण, भू = धरती, श्रेय = अभीष्ट, आग्नेय = आग बरसाने वाली, विश्व-दाहक = संसार को जलाने वाली, मृत्यु-वाहक = मौत की

वाहिका, सृष्टि = संसार, संताप = दुःख, भ्रान्त = भटका हुआ, पथ = रास्ता, भ्रमित = भटकी हुई, प्रज्ञा = बुद्धि, कुतुक = तमाशा, इन्द्रजाल = जादू, विचित्र = अनोखा, अपवित्र = अशुद्ध, भ्रष्ट।

प्रसंग :

प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से उद्धृत किया गया हैं। इस कृति में दिनकर जी ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गंभीरता से विचार किया है। यहाँ कवि कह रहा है कि विश्व में तबाही लाने वाले वैज्ञानिक आविष्कार रस से परिपूर्ण पृथ्वी के लिए घातक हैं। मौत का ताण्डव करने वाले ये आविष्कार भ्रष्ट बुद्धि की पैदावार हैं।

व्याख्या :

कवि का कहाना है कि आग बरसाने वाले अस्त्र - शस्त्र भ्रष्ट बुद्धि की देन हैं, जो रसमय धरती को दग्ध करके महानाश को आमंत्रित करते हैं। यह सब पथभ्रष्ट मतान्ध लोगों की दुर्बुद्धि का परिणाम है। संसार को दुःख के समुद्र में धकेलने का ऐसा दुस्साहस कोई संवेदनशील मनुष्य नहीं कर सकता। भ्रष्ट-बुद्धि वाले लोग इसे जादू का खेल समझते हैं। पर बर्बरतापूर्ण ऐसा निकृष्ट एवं घिनौना कार्य करने के विषय में श्रेष्ठ मानव सोच भी नहीं सकता।

विशेष :

1. कविकीधारणाहैकिवैज्ञानिकआविष्कारमानवताकेलिएवरदानकीअपेक्षा अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।
2. सटीक शब्द-चयन भावाभिव्यक्ति के अनुरूप है।
3. सरल, सहज भाषा भावों की अनुगामिनी है।
4. अनुप्रास, रूपक एवं अपह्नतिअलंकरों का सुष्टु, प्रयोग हुआ है।

सावधान, मनुष्य! यदि विज्ञान है तलवार,
तो इसे दे फेंक, तज कर मोह, स्मृति के पार ।
हो चुका है सिद्ध, है तू शिशु अभी नादान;
फूल-काँटों की तुझे कुछ भी नहीं पहचान।
खेल सकता तू नहीं ले हाथ में तलवार;
काट लेगा अंग, तीखी है बड़ी यह धार ।

शब्दार्थ : मोह = ममता पनिमोह = ममता, स्मृति = याद, सिद्ध = प्रमाणित, शिशु = बच्चा, नादान = भोला-भाला, अभनिज्ञ, तीखी = तेज।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से उद्धृत की गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किए हैं। इन पंक्तियों में कवि ने मनुष्य को वैज्ञानिक आविष्कारों के प्रति सचेत करते हुए इन्हें त्याग देने का परामर्श दिया है।

व्याख्या :

कवि कहता है कि हे मनुष्य वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रयोग सोच-समझ कर करना। यदि अस्त्र -शस्त्रों के रूप में ये आविष्कार तलवार की तरह घातक हों तो इन्हें फेंक देना ही अच्छा है। मनुष्य को अपने पुराने दिन याद करके ऐसे घातक हथियारों से दूर रहना चाहिए। इन अस्त्र -शस्त्रों के प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि तू इनका प्रयोग करने में अभी निपुण नहीं हुआ हैं। तुम्हारी स्थिति उस अनभिज्ञ भोले - भाले बालक जैसी है जिसे फूल और कांटों की, अर्थात् अच्छे और बुरे की पहचान नहीं है। ऐसी स्थिति में तू विज्ञान रूपी तलवार से मत खेल, इसकी धार बड़ी पैनी है। इससे कहीं तू अपने अंग ही न कटवा बैठे। भावार्थ यह है कि वैज्ञानिक आविष्कार मानवता के लिएअभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।

विशेष :

1. कविकाआशयहैकिविज्ञानमानवताकेलिएवरदाननहींअभिशापसिद्धहोरहीहै। मनुष्य स्वयं अपनेपैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है।
2. सटीक शब्द – चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हो गई है।
3. भाषा सरल, सहज एवं भावनाकूल है।
4. प्रतीकों से युक्त व्याख्यात्मक शैली बहुत प्रभावपूर्ण है।

श्रेय वह विज्ञान का वरदान,
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिरअवदान ।
श्रेय वह नर-बुद्धि का शिवरूप आविष्कार,
ढो सके जिससे प्रकृति सबके सुखों का भार ।
मनुज के श्रम के अपव्यय की प्रथा रुक जाय,
सुख-समृद्धि-विधान में नर के प्रकृति झुक जाय।

शब्दार्थ : सुलभ = प्राप्त, सहज = आसानी से, रूचिर = सुन्दर, अवदान = उपहार, नर – बुद्धि = मनुष्य की बुद्धि, शिवरूप = कल्याणकारी, श्रम = मेहनत,

अपव्यय = दुरूपयोग, प्रथा = परम्परा, सुख-समृद्धि - विधान = सुख और उन्नति का निर्माण।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से उद्धृत की गई हैं। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर गहन चिन्तन किया है। यहां कवि बताना चाहता है कि विज्ञान का उत्कर्ष तभी जीवनोपयोगी सिद्ध हो सकता है जब वह मानव को सुख- सम्पन्न बनाने के लिए कारगर सिद्ध हो।

व्याख्या :

कवि कहता है कि विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है किन्तु विज्ञान की वह उन्नति तभी श्रेयस्कर हो – सकती है जब उसके लाभ जन -जन को प्राप्त हों। यदि मनुष्य अपनी सद्बुद्धि से विज्ञान के आविष्कारों को लोक-कल्याण के लिए प्रयुक्त करें, जिससे प्रकृति प्रत्येक प्राणी के लिए सुख के साधन जुटाए। मनुष्य के परिश्रम का दुरूपयोग न हो। अर्थात् वैज्ञानिक आविष्कार मानवता की भलाई के लिए हों, न कि उसकी तबाही के लिए। प्रकृति मनुष्य की सुख - सुविधा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि विज्ञान सृष्टि संहारक अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार न करें, जिससे मनुष्य प्राकृतिक सम्पदा से पूर्णतः लाभान्वित हो सके।

विशेष :

1. विज्ञान के आविष्कार मानव-कल्याण के लिए हों, उनसे प्रकृति की सुषमा को कोई क्षति न हो।
2. सटीकशब्द-चयनसेअभिव्यक्तिमेंनिखारआगयाहै।

3.भाषा सरल, सहज भावानुकूल है।

4. अनुप्रास, रूपक एवं उल्लेख अलंकारों का सुन्दर समन्वय है।

श्रेय होगा मनुज का समता-विधायक ज्ञान,
स्नेह-सिंचित न्याय पर नव विश्व का निर्माण ।
एक नर में अन्य का निःशंक, दृढ़ विश्वास,
धर्मदीप्त मनुष्य का उज्ज्वल नया इतिहास
स्मर, शोषण, हास की विरुदावली से हीन,
पृष्ठ जिसका एक भी होगा न दग्ध, मलीन।
मनुज का इतिहास, जो होगा सुधामय कोष,
छलकता होगा सभी नर का जहाँ संतोष।

शब्दार्थ : समता-विधायक = समानता लाने वाला, स्नेह - सिंचित = प्रेम से सींचा हुआ, नव = नए, विश्व = संसार, निर्माण = रचना, निःशंक = बिना सन्देह, दृढ़ = पक्का, धर्म-दीप्त = धर्म से प्रकाशित, उज्ज्वल = सुनहरी, समर = युद्ध, हास = पतन, विरूदावली = गुणगान, दग्ध = जला हुआ, मलीन = मैला, सुधामय = अमृत से भरा, कोष = खजाना, संतोष = तृप्ति ।

प्रसंग :

प्रस्तुत पद्यांश राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्यकुरूक्षेत्र के षष्ठ सर्ग से उद्धृत किया गया है। इस कृति में कवि ने विश्वव्यापी युद्ध एवं शांति की ज्वलन्त समस्या पर बड़ी गंभीरता से विचार किया है। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पारस्परिक प्रेम एवं समता की भावना को सुदृढ़ करने की कामना की है। यदि मनुष्य ऊँच – नीच की भावना को छोड़कर धर्म के मार्ग पर चले तो निश्चय ही नए इतिहास का निर्माण हो सकता है।

व्याख्या :

कवि का विश्वास है कि मानवता का विकास तभी होगा जब मनुष्य की सोच समतावादी होगी। प्रेम से परिपूर्ण न्याय व्यवस्था के आधार पर ही नए विश्व की रचना हो सकती है। इसके लिए लोगों का पारस्परिक निश्छल प्रेम तथा पक्का इरादा जरूरी है। यदि मनुष्य धर्म से आलोकित मार्ग पर चले तो निश्चय ही एक नए सुनहरी इतिहास का निर्माण हो सकता है। ऐसा इतिहास जिसमें युद्ध, अत्याचार, और पतन का कहीं नामोनिशान न हो, जिसका एक भी पन्ना किसी के कृत्रिम गुणगान से न सजा हो, जिसमें शोषण एवं निकृष्टता का कोई उल्लेख न हो। ऐसा इतिहास जो मनुष्य के सुधासिक्त क्रिया- कलापों से परिप्लावित होगा, जिस से सभी लोग सन्तुष्ट होंगे।

विशेष:

1. यहां कवि ने एक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना का स्वप्न संयोया है, जिसमें कोई किसी पर सन्देह न करें, सब लोग परस्पर प्रेम एवं सद्भावनापूर्वक रहें। ऐसा समाज अमृताचमन का आनन्द ले सकता है।

2. भाषा सरल सहज एवं भावानुकूल है।

3.सटीक शब्द - चयन से अभिव्यक्ति सशक्त हुई है।

4. अनुप्रास, रूपक, दीपक तथा उल्लेख अलंकारों का सुष्टु प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है।

युद्ध की ज्वर-भीति से हो मुक्त,
जब कि होगी, सत्य ही, वसुधा सुधा से युक्त।
श्रेय होगा सुष्ठु-विकसित मनुज का वह काल,
जब नहीं होगी धरा नर के रुधिर से लाल।
श्रेय होगा धर्म का आलोक वह निर्बन्ध,
मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध ।

शब्दार्थ :

ज्वर = ताप, भीति = भय, मुक्त = स्वतंत्र, वसुधा = धरती, सुधा = अमृत, युक्त = परिपूर्ण, सुष्ठु = सुन्दर, मनुज = मानव, धरा = धरती, रूधिर = रक्त, नर = मनुष्य, आलोक = प्रकाश, निर्बन्ध = बाधा रहित, सम्बन्ध = रिश्ता।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित उनके प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से ली गई हैं। इस कृति में कवि ने वर्तमान युग में व्याप्त युद्ध और शांति की ज्वलन्त समस्या पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। यहां कवि कामना करता है कि मनुष्य युद्ध की विभीषिका से मुक्त हो जाए। लोग परस्पर सौहार्दपूर्वक रहें, कहीं रक्तपात न हो, सर्वत्र खुशियों का चमन खिल उठे। लोग धर्म के मार्ग पर चल कर प्रेम - रज्जू से बन्ध जाएं।

व्याख्या :

कवि सोचता है कि वह दिन कब आएगा जब यह धरती युद्ध की ज्वाला के भय से मुक्त हो जाएगी। युद्ध की दुर्दान्त ज्वाला से स्वतंत्र होने पर इस धरती पर अमृत की धारा बहने लगेगी। वह समय मनुष्य के विकास का स्वर्ण-युग होगा जब इस धरती पर मनुष्य, मनुष्य का खून नहीं बहाएगा। यह धरती युद्धों के कारण रक्तरंजित नहीं होगी। मनुष्य बिना किसी रोक-टोक के धर्म का मार्ग प्रशस्त करेगा। ऐसी स्थिति में लोगों के पारस्परिक सम्बन्ध अपने आप ही सुदृढ़ हो जाएंगे।

विशेष :

1.कवि की निर्दिष्ट आदर्श सोच को इन शब्दों में संजोया जा सकता है: जिस दिन इस भू से दानवता और खुदगर्जी मिट जाएगी। उस दिन यह मानव नाचेगा, उस दिन यह धरती गाएगी।

2.सटीक शब्द-चयन से अभिव्यक्ति प्रभावात्मक बन पड़ी है।

3. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल है।

4. अनुप्रास, रूपक और यमक अलंकारों का मणिकांचन संयोग देखते ही बनता है।

साम्य की वह रश्मि स्निग्ध, उदार,
कब खिलेगी, कब खिलेगी विश्व में भगवान?
कब सुकोमल ज्योति से अभिसिक्त
हो, सरस होंगे जली-सूखी रसा के प्राण?

शब्दार्थ:

साम्य = समानता, रश्मि = किरण, स्निग्ध = मृदुल, कोमल, उदार = व्यापक, सुकोमल = मृदुल, मसृण, ज्योति = प्रकाश अभिसिक्त = सिंचित, सरस = रस से परिपूर्ण, रसा = धरती।

प्रसंग :

प्रस्तुत पंक्तियां राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्य कुरुक्षेत्र के छठे सर्ग से उदधृत की गई हैं। इस कृति में कवि ने साम्प्रतिक विश्वव्यापी युद्ध और शांति की ज्वलन्तसमस्या पर विचार किया है। कवि को इस धरती पर समानता एवं प्रेम के सुन्दर फूल खिलने की चाहत है। अतः वह भगवान से पूछता है कि वह दिन कब आएगा जब युद्धों से दग्ध इस धरती के प्राणों में रस का संचार होगा।

व्याख्या :

दिनकर जी धरती पर हुए रक्तपात से दुखी होकर परमात्मा से पूछते हैं कि हे भगवान! इस धरती पर समानता की शीतल वायु कब बहेगी, उदारता के कोमल भाव कब पनपेंगे। हे भगवान, यहां खुशियों के फूल कब खिलेंगे? युद्धों से मस्मीभूत इस पृथ्वी पर कब अमृत का संचार होगा, कब इस पर हरियाली सरसाएगी? मानव, मानव में समानता का भाव कब जागृत होगा।

विशेष:

1. यहां कवि का मानवतावादी स्वर भास्वर हुआ है। वह चाहता है कि विश्व के सब लोग परस्पर प्रेम से रहें। ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, गोरे-काले का भेद लोगों में न रहे।
2. शब्द - चयन विषयानुकूल है।
3. भाषा सरल, तरल एवं प्रभावात्मक है।
4. अनुप्रास एवं प्रश्न अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है।

3.3. सारांश :

कुरुक्षेत्र के इस सर्ग में कवि ने बताया है कि आज भी मनुष्य के मन में कुरुक्षेत्र चल रहा है। वैज्ञानिक आविष्कारोंके बल पर विश्व के सब देश एक दूसरे को ध्वस्त करने पर तुले हुए हैं। शस्त्र-अस्त्रों की होड़ में विश्व युद्ध-स्थल में परिवर्तित होता जा रहा है। आज का संसार पहले वाला संवेदनशील संसार नहीं रहा। उसने प्रकृति के सभी उपादानों को अपनी बुद्धि के बल पर जीत लिया है। ग्रह-उपग्रह, आकाश-पाताल और पृथ्वी पर सर्वत्र उसका आधिपत्य है। वायु, अग्नि, वरुण आदि सब देवता उसकी मुट्ठी में हैं। कवि संसार की यह दारुण दशा देखकर बड़ा व्यग्र है।कवि सोचता है कि वह दिन कब आएगा जब लोग युद्ध की आशंका से मुक्त होकर सौहार्दपूर्ण स्वतंत्र परिवेश में आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे। युद्धों से भस्मीभूत हुई इस पृथ्वी पर कब अमृत की धारा बहेगी। मानव, मानव में सौहार्द एवं समता के भाव कब जागृत होंगे। अपनी राक्षसी प्रवृत्ति को छोड़कर मानव कब देवत्व कीओर अग्रसर होगा?

3.4.मुख्य शब्दावली :

ज्योति=प्रकाश
सरस =रस से परिपूर्ण
उद्दाम =प्रबल
मुष्टि = मुट्ठी
नव्य-नर = आधुनिक मानव
लघु गेह= छोटा घर
व्योम=आकाश
आगार = भण्डार

4. कुरुक्षेत्र 7 वा सर्ग

इकाई के मुख्य उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. दिनकर के जीवन के विविध आयामों से परिचित हो पाएँगे।
2. दिनकर की रचना-प्रक्रिया से अवगत हो पाएँगे ।
3. दिनकर के द्वन्द्वात्मक चिन्तन की तह तक पहुँच पाएँगे।
4. दिनकर के मानवतावादी विचारों की जानकारी ले पाएँगे ।
5. दिनकर की प्रगतिवादी एवं प्रगतिशील भावनाओं को जान पाएँगे ।
6. दिनकर के साहित्यिक अवदान की परख कर पाएँगे।

इकाई की रूपरेखा :

4.1 परिचय

4.2 दिनकर की जीवनी एवं रचना संसार

4.2.1 दिनकर : जीवन परिचय

4.2.2 दिनकर : रचना संसार

4.3 दिनकर के काव्य की प्रवृत्तियां

4.3.1 उत्तर छायावादी काव्य

4.3.2 मानवतावादी चिन्तन

4.4 कुरुक्षेत्र का सप्तम सर्ग का परिचय-

4.5 व्याख्याएँ

4.6 सारांश

4.1 परिचय :

'दिनकर'जी निश्चय ही हिन्दी साहित्य के आलोक-स्तंभ दिवाकर हैं, जिनके काव्य की आभा से आधुनिक हिंदी साहित्य जगमगा रहा है। उन्होंने 1928-29 में विधिवत् साहित्य-सृजन के क्षेत्र में पदार्पण किया था। तब से लेकर वे जीवनपर्यन्त निरन्तर धारा-प्रवाह लिखते रहे। उनके काव्य में हमें जीवन के विविध आयाम परिलक्षित होते हैं। बचपन से ही संघर्षमय जीवन से दो-दो हाथ करते रहने के कारण उनके जीवन में आक्रोश एवं क्रांति का उदघोष अपेक्षाकृत ऊँचे स्वर में सुनाई पड़ता है।दिनकर के यौवन-काल में भारत की स्वतंत्रता का आन्दोलन पूरे देश में बड़े जोर-शोर से चल रहा था, जिसे उत्प्रेरित करने के लिए इनकी लेखनी भी आग में घी डालने का काम करने लगी।आत्मविश्वास, कर्मठता,

सामयिक प्रश्नों के प्रति जागरूकता चुनौती भरा आशावादी स्वर, उदात्त सांस्कृतिक दृष्टिकोण, प्रखर राष्ट्राभिमान आदि ऐसे तत्त्व हैं जो दिनकर को परम्परावादी कवियों से अलग करते हैं। वे सच्चे अर्थों में युगचारण तथा जनकवि थे। राष्ट्रीय भावनाओं के ओजस्वी गायक दिनकर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चेतना एवं जनसाधारण का शंख फूंका है। उनमें निर्भीकता थी, स्पष्टवादिता थी। इसी लिए वे अपनी समस्त रचनाओं में युगीन स्थितियों के विरूद्ध तीव्र आक्रोश व्यक्त करते थे। पूंजीवादी शोषण व्यवस्था की धज्जियां उड़ा देते थे। वे विदेशी नृशंस शासकों को सिंहासन खाली करने के लिए कहते हैं। उन्हें विश्वास था खुद पर, अपने देश के बान्धवों पर। वे जानते थे कि एक-न-एक दिन आजादी मिल कर रहेगी और वह भी सामान्य जनता के कारण।

दिनकर के काव्य का पर्यवेक्षण करने पर पता चलता है कि उसमें आरम्भ से ही एक ओर तो उत्तेजना और आक्रोश भरी राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना और दूसरी और 'सुन्दरता का आनन्द लेने की प्रवृत्ति, दोनों का सह-अस्तित्व है।

4.2.दिनकर की जीवनी एवं रचना-संसार

4.2.1.दिनकर: जीवन परिचय:

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर का जन्म 23 सितम्बर, 1908 को गाँव सिमरिया, जिला बेगूसराय, बिहार में हुआ। इनके पिता का नाम रवि सिंह तथा माता का नाम मनरूप देवी था। इनका परिवार कृषि-कार्य करके अपनी जीविका चलाता था। ये चार भाई-बहन थे। तीन भाई तथा एक बहन। जब ननुआ (रामधारी सिंह) दो वर्ष का ही था कि इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता के निधन के बाद इनके परिवार पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। इनकी माता ने जिस किसी तरह इनका पालन-पोषण किया। ये बड़े कुशाग्र बुद्धि थे। निर्धनता से लड़ते हुए, इन्होंने 1928 में मैट्रिक की परीक्षा पास की। तदुपरान्त सन् 1932 में पटना विश्वविद्यालय से बी. ए. आनर्स की उपाधि प्राप्त की।

इसके बाद ये एक विद्यालय में सरकारी नौकरी करने लगे तथा 1934 से 1947 तक इन्होंने बिहार सरकार की सेवा में सब रजिस्ट्रार और प्रचार विभाग के उपनिदेशक पदों पर कार्य किया। सन् 1950 से 1952 तकमुजरपफरपुर कालेज में हिंदी के विभागाध्यक्ष रहे। 1952 में प्रथम राज्यसभा का गठन हुआ तब इन्हें राज्य सभा का सदस्य मनोनीत किया गया और ये 1964 तक पूरे 12 वर्ष राज्य सभा की शोभा बढ़ाते रहे। इनका स्वभाव बड़ा सौम्य था और ये मृदुभाषी थे, परन्तु जब कभी देश की अस्मिता की बात आती तो ये बेबाक

टिप्पणी करने से नहीं चूकते। एक बार इन्होंने भारत के प्रधानमंत्री, पण्डितजवाहरलालनेहरू पर कटाक्ष करते हुए संसद में चन्द पंक्तियां सुनाई तो देश में तूफान मच गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि राज्यसभा सदस्य के रूप में दिनकर का चुनाव पण्डितनेहरू ने ही किया था। इसके बावजूद, उन्होंने नेहरू की नीतियों पर प्रखर प्रहार किया -देखने में देवता सदृश्य लगता है बन्द कमरे में बैठकर गलत हुक्म लिखता है। जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा होसमझो उसी ने हमें मारा है।

नेहरू जी से इनकी प्रगाढ़ मित्रता थी। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक संस्कृति के चार अध्याय की भूमिका नेहरू जी ने ही लिखी थी। एक बार ये दोनों सदन से इकट्ठे ही निकल रहे थे तो नेहरू जी ठोकर खाकर गिरने लगे तो दिनकर जी ने उन्हें थाम लिया। नेहरू ने इनको शुक्रिया कहा तो इन्होंने तपाक से उत्तर दिया, “नेहरू जी, जब-जब सत्ता (राजनीति) लड़खड़ाती है तो सदैव साहित्य ही उसे संभालता है।” सन् 1964 से 1965 तक ये भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति रहे तथा 1965 से 1971 तक इन्होंने भारत सरकार में हिंदी सलाहकार तथा आकाशवाणी के निदेशक के रूप में कार्य किया।इन्हें सन् 1959 में इनकी प्रसिद्ध साहित्यिक रचना 'संस्कृति के चार अध्याय के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसी वर्ष भारत सरकार ने इन्हें ‘पद्म भूषण’ की उपाधि से अलंकृत किया। इनकी श्रेष्ठ रचना ‘उर्वशी’ के लिए इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सुशोभित किया गया।

24 अप्रैल, 1974 को हृदयगति रुक जाने के कारण, इनका आकस्मिक निधन हो गया। सन् 1999 में भारत सरकार ने इनकी स्मृति में डाक टिकट जारी किया। इन्होंने अपने जीवन-काल में विपुल साहित्य का सृजन किया, जिसकी जानकारी इनके अग्रदत रचना-संसार से सहज ही प्राप्त की जा सकती है।

4.2.2.दिनकर : रचना-संसार

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। उनका गद्य एवं पद्य समान रूप से समादृत हुआ, लेकिन उनकी सर्वाधिक ख्याति का आधार उनकी पद्यात्मक रचनाएं ही हैं। देश-प्रेम से परिप्लावित उनकी काव्य-साधना के परिप्रेक्ष्य में ही उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में सम्मान मिला। कालक्रम के अनुसार उनके रचना-संसार को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है - रेणुका (1935), हुंकार (1938), रसवंती (1939), द्वन्द्वगीत (1940), कुरुक्षेत्र (1946), मिट्टी की ओर

(1946), धूप-छाँह (1946), सामधेनी (1947), बापू (1947), इतिहास के आँसू (1951), धूप और धुआं (1951), रश्मिरथी (1952), नीम के पत्ते (1954), दिल्ली (1954), नील कुसुम (1955), सूरज का ब्याह (1955), चक्रवाल (1956), कवि श्री (1957), सीपी और शंख (1957), उर्वशी (1961), परशुराम की प्रतीक्षा (1963), कोयला और कवित्व (1964), मृत्तितिलक (1964), हारे को हरि नाम (1970) जैसा की पहले उल्लेख किया जा चुका है, दिनकर का गद्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। सुना जाता है कि उन्होंने 29 गद्यात्मक पुस्तकें लिखी। इनमें से कुछ प्रमुख पुस्तकों को इस प्रकार नामांकित किया जा सकता हैमिट्टी की ओर (1946), अर्द्धनारीश्वर (1952), रेती के फूल (1954), हमारी सांस्कृतिक एकता (1954), संस्कृति के चार अध्याय (1956), वेणुवन (1958), राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता (1958),

4.3.दिनकर के काव्य की प्रवृत्तियाँ

4.3.1.उत्तर छायावादी काव्य :

साहित्य में कोई भी वाद स्थाई नहीं रहता। छायावाद भी नहीं रहा। इसके बाद छायावादोत्तर काव्य का उन्मेश हुआ। इस नवीन प्रवृत्ति के आविर्भाव से उद्‌भूत काव्य को प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया गया। साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन के प्रवेश को 'प्रगतिवाद'कहने का प्रचलन हो गया। मार्क्स के मतानुसार संसार में वर्गसंघर्षों का कारण आर्थिक विषमता है। इसलिए प्रगतिवादी साहित्य में शोषित, पीड़ित, तिरस्कृत, पद-दलित और मज़लूम समाज के प्रति संवेदना का स्वर सुनाई पड़ता है। दीन-दुखियों की आह-कराह का करूणक्रन्दन इस पीढ़ी के कवियों की लोकप्रिय कथावस्तु है। किसान-मजदूर की भयावह निरीह स्थिति का यथार्थ चित्रण करना ही इस दौर के कवियों की प्रबल प्रवृति रही है। मानवतावाद, शोषकों के प्रति आक्रोश, सामन्तशाही का विरोध, अन्तर्राष्ट्रीयता या विश्वबन्धुत्व की भावना, सामयिक समस्याओं के प्रति सजगता और जीवन का यथार्थ चित्रण, इस कालखण्ड की कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सरलता, व्यंग्यात्मकता, मुक्त छन्द और अनावश्यक अलंकारों के प्रयोग से परहेज करना प्रगतिवादी काव्य की खास पहचान है। साम्यवादी समाज की स्थापना करना इस काल के कवियों का अभीष्ट आदर्श रहा है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर इस काव्यधारा के कवियों में अग्रगण्य हैं।

4.3.2.मानवतावादी चिन्तन:

साहित्य का प्रमुख लक्ष्य मानव-कल्याण का पथ प्रशस्त करना है। भारतीय संस्कृति की तो नींव ही सर्वमंगल-कामना पर आधारित है। अतः दिनकर जैसे भारतीय संस्कृति के उन्नायक के लिए मानवतावादी साहित्य-सृजन में निरत होना स्वाभाविक ही था। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारीप्रसादद्विवेदी का कथन है कि कल्पना की ऊँची उड़ान, विषम परिस्थितियों को अनुकूल बनाने उमंग और सामाजिक चेतना की तीव्रता के कारण दिनकर प्रथम दो कवियों से एकदम भिन्न हैं। दिनकर के काव्य में उमंग और मस्ती तथा सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है।

दिनकर के काव्य को रेखांकित करते हुए डॉ.नगेन्द्र ने लिखा है कि दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता हैअपने देश और युग सत्य के प्रति जागरूकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिन्तन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं आदि के हीरूप में नहीं, उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में भी पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों को नए जीवन सन्दर्भो के परिप्रेक्ष्य में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवन्तता प्रदान की है, दूसरी ओर वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए उन्हें प्राचीन किन्तु जीवन्त मूल्यों से जोड़ना चाहा है।वैसे तो दिनकर के काव्य में बार-बार मानव-मंगल की भावना परिलक्षित होती है पर कुरुक्षेत्र का तो एक-एक पृष्ठ मानवता की भावना से अनुप्राणित है। युधिष्ठिर की विरक्ति का प्रमुख कारण कुरुक्षेत्र के रण में हुई मानवता का विनाश है। युद्ध क्षेत्र से निकलने वाली चीख-पुकार उसे आत्मग्लानि से भर देती है। वह नर-संहार से प्राप्त विजय की भर्त्सना करता है।

4.4. कुरुक्षेत्र का सप्तम सर्ग का परिचय :

इस सर्ग में भी कथा भाग नगण्य है। कवि ने भीष्म के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट किया है। इस सर्ग के प्रारंभिक अंश में कवि ने स्वयं कुछ बातें कहीं हैं और बाद में भीष्म को वक्ता के रूप में प्रस्तुत किया है। भीष्म के लंबे व्याख्यान द्वारा कवि ने मानवीय समता प्रेरित क्रान्तिमूलक कर्म-योग की प्रतिष्ठा की है। कवि ने युधिष्ठिर को विश्व-पीड़ा का अन्मूलन करने हेतु कृतसंकप्ल दिखाया। उन्होंने भाग्यवाद, पूँजीवाद,अकर्मण्यता का खंडन, प्रवृत्ति-निवृत्ति का समन्वय आदि का विश्लेषण करके अंत में मानवता के विकास हेतु गगन में उड़ने की अपेक्षा इस महीतल को समृध्दि-समपन्न बनाने का आग्रह किया –

आशा के प्रदीप को जलाये चलो धर्मराज,
एक दिन होगी मुक्त भूमि रण-भीति से ।
भावना मनुष्य की न राग में रहेगी लिप्त,
सेवित रहेगा नहीं जीवन अनीति से ।

महाभारत की कथा के ग्रहण करने के बावजूद भी कवि ने उसकी आत्मा में नवीनता भर दी । कुरुक्षेत्र में कवि की भावधारा पर सरल, तिलक, मार्क्स, गाँधी आदि के स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होने के साथ-साथ गीता एवं कर्म-योग का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है-

कर्मभूमि है निरिक्लमहीतल,जब तक नर की काय,
तब तक है जीवन के अणु-अणुमें कर्तव्य समाया ।

भारतीय संस्कृति अत्यंत प्राचीन एवं संपन्न संस्कृति है जिसका विकास पुराणों की अनुपम देन है । वास्तविक रूप में पुराण भारतीय साहित्य का मूल कंद ही है । पुराणों के पात्र विभिन्न मूल्यों एवं मनोविकारों के प्रतीक के रूप में उभर आते हैं । इनके माध्यम से आस्था-अनास्था, सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, अच्छाई-बुराई आदि को बखूबी से प्रस्तुत कर सकते हैं । आज के आधुनिक कवि पुराणों के पात्रों को साधन के रूप में स्वीकार करके अपने मन में स्थित मनोविकारों को शामिल करने के साथ-साथ, मन की शंका का भी समाधान कर लेते हैं । इस श्रेणी के कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'निराला', रामधारी सिंह 'दिनकर', 'नागार्जुन', 'रंगेय राघव', 'बालकृष्ण शर्म', 'नवीन', धर्मवीर 'भारती' नरेश मेहता आदि अनेक महान विभूतियों को अंका जा सकता है ।

रामधारी सिंह दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में युधिष्ठर और भीष्म को अपनी भावाभिव्यक्ति के साधन बनाए । अतः युधिष्ठिर और भीष्म 'कुरुक्षेत्र' के दो मुख्य पात्र हैं । आधुनिक कवियों केपौराणिक पात्र सामान्य मानव के निकट ज्यादा होते हैं । इस काव्य के नायक के रूप में युधि।ठिर को परिगणित किया जा सकता है, चूँकी उन्हीं के शंकाकुल हृदय में युध्द की भीषण सामस्या हलचल उत्पन्न करती है और अंत में उनकी समस्या का ही समाधान होता है । मानवीय मूल्यों की स्थापना, सामाजिक मंगल और कालानुकूल चिन्तन इन पात्रों की विशेषताएँ हैं । इन पौराणिक पात्रों के माध्यम से परंपरागत रूढ़ियों, जाति-पाँत की व्यवस्था, पूँजीपतियों का शोषण आदि पर कुठाराघात किया गया है । इन पात्रों के माध्यम से कवि ने अपने ही मन की शंका को मार्मिक ढ्ग से प्रस्तुत करने के

प्रयास के माध्यम के साथ-साथ शंका का समाधान भी अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत भी किया है। इन पात्रोंका परिचय इस प्रकार है-

युधिष्ठिर :

इस काव्य में युधिष्ठिर एक सहृदय, सुशील, कोमल, धार्मिक एवं अहिंसावादी मानव के प्रतीक हैं। आरंभ से लेकर काव्य के अंत तक युधिष्ठिर को पाश्चात्य तथा चिन्ता लीन दिखाया गया है। सामान्य व्यक्ति न ही अपने जीवन-यापन के बारे में विचार करता है और न ही समाज के बारे में। फिर भी वह उदासीन दिखाई पड़ता है। किन्तु विशिष्ट व्यक्तित्व संपन्न व्यक्ति है। इसीलिए युद्ध की भीषण हाहाकार ने उनके सुकोमल हृदय में हलचल उत्पन्न कर दी। विजय प्राप्त करने के पश्चात सारे पांडव हर्ष के मदिरा-पान में बेसुध हैं। लेकिन युधिष्ठिर का हृदय महाभारत के व्यापक विनाश पर चिन्ता लीन हो रहा है। उनके अंतःकरण में पुत्र-विहीन माताओं व अभागिनी विधवाओं का आर्तनाद, अनाथ बच्चों का चीत्कार, घायलों का करुणामय क्रंदन मन को झकझोर कर भय, व्यय को ठहराता है। कवि ने युधिष्ठिर की स्थिति का वर्णन इस तरह किया है
किन्तु, इस उल्लास-जड समुदाय में, एक ऐसा भी पुरुष है, जो विकल
बोलता कुछ भी नहीं, पर रो रहा, मग्न चिन्तालीन अपने-आप में है।

आधुनिक युग में पात्रों के चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक ऐसा भी वक्त आता है जब वह बाहर से तो एकदम शांति दिखाई देता है किन्तु अंदर से विचारों के तूफान में फंसकार अपने आप को असहाय-सा महसूस करता है। दुविधा एवं असमंजस से घिरा हुआ युधिष्ठिर इन दोनों पक्षों का तर्क-वितर्क करने में मग्न दिखाई पड़ता है। व्यक्ति के मन में उषनेवाले विरोधी पक्षों के संघर्ष को ही वस्तुतः 'अंतरद्वन्द' कहा जाता है। युद्ध को लेकर युधिष्ठिर के मन में जिस अंतरद्वन्द का जन्म हुआ उसी को कवि ने बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है-

एक ओर सत्यमयी गीता भगवान की है,
एक ओर जीवन की विरति, प्रबुध्द है,
जानता हूँ, लड़ना पड़ा था हो विवश, किन्तु-
लोहू-सनी जति मुझे दीखतीअशुध्द है,
ध्वंसजन्य सुख थाकिसाश्रु दुख शांतिजन्य,
ज्ञान नहीं, कौन बात नीति के विरुध्द है,
जानता नहीं मैं कुरुक्षेत्र में खिला है पुण्य,

या महान पाप यहाँ फूटा बना युद्ध है ।

युधिष्ठिर को कवि ने विश्व-शांति ओर प्रेम के पुजारी के रूप में प्रस्तुत किया है । वह एक ऐसा आदर्श सारांश की कल्पना करता है जिसमें न ही कभी युद्धहोगा, न ही द्वेष का बीज बोया जाएगा । युधिष्ठिर के हृदय में विश्व बंधुत्व की भावना भरपूर है । अंत में युधिष्ठिर आशा एवं विश्वास की साकार मूर्ति के रूप में प्रकटहुआ है । कवि ने मार्मिक ढंग से युधिष्ठिर को मानवता के अनन्य पुजारी, हिंसा के परम विरोधी, सौहार्द्र एवं सहानुभूति को जाग्रत करने वाले के रूप में चित्रित किया है ।

भीष्म पितामह :

'कुरुक्षेत्र' का दूसरा मुख्य पात्र हैं भीष्म पितामह । त्याग, पराक्रम, दृढ़-प्रतिज्ञा, नीति, ज्ञान, धर्म एवं शौर्य की साकार मूर्ति हैं ।भारतीय संस्कृति के इतिहास में भीष्म कठोर प्रतिज्ञा और अनन्य त्याग के लिए प्रसिद्ध हैं । भीष्म के हृदय में भी धर्म और प्रेम के बीच संघर्ष चल रहा था, फिर भी उन्होंने विवेक एवं संयम को भी नहीं छोड़ा । अपने हृदय में हिलोरें लेने वाले युद्ध-संबंधी तूफान को नीति एवं युक्ति के सहारे दूर करने का प्रयास करते हैं तथा युद्ध की तुलना तूफान से करके बड़ी सरल एवं सुबोध रीति से युधिष्ठिर को युद्ध की अनिवार्यता समझाते हैं-

ओ युधिष्ठिर से कहा, तूफान देखा है कभी?
किस तरह आता प्रलय का नाद वह करता हुआ,
काल-सा वन में दुमों को तोड़ता-झकझोरता,
और मूलोच्छेद कर भू पर सुलाता क्रोध से
उन सहस्त्रोंपादपों को जो कि क्षीणाधार हैं?

भीष्म तत्व-ज्ञानी है । उनकी युक्तियाँ बड़ी फचित एवं समीचीन हैं । उनके समझाने का ढंग भी हृदय-स्पर्श है-

बहे प्रेम की धार, मनुज कोवह अनवरत भिंगोये,
एक दूसरे के उन में नरबीज प्रेम के बीच ।

भीष्म धर्म के ज्ञात है । वे भली-भाँति जानते हैं कि व्यक्ति और समाज का क्या-क्या धर्म है । अतः जब

युधिष्ठिर धर्म के प्रति अपनी शंका प्रस्तुत करता है तब भीष्म धर्म के रहस्य को समझाता है-

व्यक्ति का है धर्म तप, करुणा, क्षमा,

व्यक्ति की शोभा विनय भी, त्याग भी,
किन्तु उठता प्रश्न जब समुदाय का,
भूलना पड़ता हमें तप-त्याग को।

भीष्म वीरता एवं आत्मा-बलिदान को आदर्श मानकर चलनेवाला पराक्रमी एवंशूरवीर है। अतः युधिष्ठिर के कायरतापूर्ण वचन उन्हें ठेस पहुँचाती है। युधिष्ठिर को क्षाप्रधर्म का यह रहस्य समझाते हैं कि युद्ध करना कोई पाप नहीं है क्योंकि क्षत्रिय रणभूमि में कायर की तरह भागना पसंद नहीं करता वरन् वीर-गति प्राप्त करना अपना सौभाग्य मानता है। त्याग, तप, भिक्षा आदि बातें तो विरक्त योगियों का धर्म होता है न कि शूर-वीरों का। तप, त्याग, करुणा, क्षमा आदि आत्म-शक्ति जगाने में सहायक हो सकते हैं परंतु हिंसक पशु का सामना करने के लिए सिर्फ बलिष्ठ शरीर ही काम आता है। उस समय सिर्फ मनोबल से काम नहीं चलता।

भीष्म पितामह स्पष्ट शब्दों में प्रतिक्रियात्मक युद्ध एक अनिवार्य कर्म है। जब संसार में अनीति बढ़ जाती है तब नीति एवं शांति को कायम रखने का रक्त चूसता रहा और गिरगिट की कृत्रिम शांति की दुहाई देता रहा। कवि इन पर व्यंग करते हुए भीष्म के मुख से कहलवाया-

शांति खोलकर खड्ग क्रांति का, जब वर्जन करती है,
तभी जान लो, किसी समर का, वह सर्जन करती है।

उपरोक्त पंक्तियों में दिनकर का प्रगतिवादी रूप प्रखर हो उठा है।

भीष्म ब्रह्मचर्य के व्रती, धर्म के महास्तंभ, बल के आगार होने के साथ-साथ परम विरागी पुरुष, त्यागी तथा तपस्वी हैं। धर्म के कारण उन्होंने राजसिंहासन का एवं प्रेम की कोमल भावनाओं का त्याग किया। फिर भी उनके मन में अंतः सलिला का तरह पाण्डवों के प्रति स्नेह भावना बहती रहती है। अतःअर्जुन बाणों से आहत होकर शरों के नोंक पर लेट गए-

शरों का नोंक पर लेटे हुए गजराज-जैसे,
थके, टूटे गरुड-से सस्तपन्नगरज-जैसे,
मरण पर वीर जीवन का अगम बल-भार डाले
दबाये काल को, सायस संज्ञा को संभाले।

भीष्म का मन पश्चाताप की आग से धधक रहा था। जब भी उसकी आँखोंकी सामनेद्रौपदी के अपमान का दृश्य नाचने लगता है तब उनका मन ज्वालामुखी की तरह धधकने लगता है तथा अपने आप को धिक्कारते हैं –

धिक्धिक् मुझे उत्पीडितसम्मुख राज-वधूटी,
आँखों के आगे अबला की, लाज खलों ने लूटी ।

समता-साम्राज्यवादी दृष्टिकोण के विरुध्द दिनकर ने नया मानववादी चिन्तन प्रस्तुत किया है । उनका भीष्म मानवता के पुजारी है । युधिष्ठिर को भी मनुष्यों में निहित सच्ची मानवता की सेवा करने की सलाह देते हैं।भीष्म अंत में "था कुटुम्ब-सा जन-समाज"तथानिज को ही देखो न युधिष्ठिर!देखोनिखिल भुवन को कहकर वस्तुधैवकुटुम्बम् की भावना पर विशेष पर बल दिया है, साथ ही अकर्मण्यता का खंडन भी किया है-

अकर्मण्य वह पुरुष कामकिसके, कब आ सकता है?
मिट्टी पर कैसे वह कोई, कुसुम खिला सकता है?

अतः भीष्म के रूप में कवि ने अन्याय एवं अत्याचार का खण्डन करते हुए हिंसा का समर्थन अवश्य किया है, किन्तु उनका मुख्य उद्देश्य विश्वशांति ही है । भीष्म के उपर्युक्त संदेश के द्वारा युधिष्ठिर के हृदय-ताप के शमन का मार्ग प्रस्तुत किया गया है ।

इस 'कुरुक्षेत्र' काव्य के भीष्म पितामह के पात्र-चित्रण मेंकवि दिनकर की एक विशेष दृष्टिकोण प्रदर्शित है । उन्होंने भीष्म के अंतर्मथन और अंतर्द्वन्द का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया । भीष्म पितामह अपने अंतर्मथन में यह सोचते हैं कि यदि द्रौपदी की लाज लुटते समय ही मैं कुरु सभा में उठकर विद्रोह करता और इस अन्याय का विरोध करता तो शायद देश को महाभारत के विनाशकारी परिणाम का यह दिन देखना पड़ना । अतः वे यह मानते हैं कि इस अन्याय को धर्म और प्रतिज्ञा के बंधन से सहन करके कुरुक्षेत्र के युद्ध की ओर इस देश को ढकेल –

राज-द्रोह की ध्वजा उठाकर, कहीं प्रचार होता,
न्याय-पक्ष लेकर दुर्योधन, को ललकार होता ।
स्थान सुयोधन भीत उठाता, पग कुछ अधिक संभल के
भरतभूमिपडिती न स्यात्त, संगर में आगे चल के ।

युद्ध के विनाशक रूप का विद्रोह करते हुए प्रेम-भाव एवं शांति का प्रतिस्थापन किया गया है । इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य 'कुरुक्षेत्र' में धार्मिक, नैतिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है

। इसके अतिरिक्त भारतीयों की कृतयुग त्रेतायुग, द्वापर युग तथा कलियुग की मिथकीय कल्पना के अनुसार कवि ने भीष्म के शब्दों में सबसे पहले मानव समाज में कैसी समता युक्त शांति की व्यवस्था का राज था, फिर मानव के मन में स्वार्थ लोलुप वृत्ति के विकास के कारण व्यक्तिगत स्वार्थकी सिद्धि के लिए धन संग्रह करने और अन्याय से राज्याधिकार हस्तगत करने की चेष्टा हुई फिर उसके विरोध में समता की स्थापना के लिए और सुख के समान बटवारे के लिएकैसी जनक्रांति उमड़ उठी, इन सबका वर्णन किया । इस वर्णन के संदर्भ में कवि ने मार्क्सवादी या साम्यवादी सिद्धांत के अनुसार कहीं जानेवाली आदमि साम्यवादी व्यवस्था, सामंतवादी तथा पूंजीवादी व्यवस्था को भीष्म के शब्दों में दर्शाया है ।

इसी प्रक्रिया में शोषण मुक्त तथा शासन रहित समतापूर्ण समाजकी स्थापना हेतु सर्वहारा वर्ग की ओर से आविर्भूत क्रांति का झलक भी भीष्म के शब्दों में दर्शाया । इससे यह स्पष्ट होता है कि दिनकर के काव्य में भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शनों का प्रभाव समन्वित रूप से मुखरित हुआ ।

4.5. व्याख्याएँ :

(1)

महीं नहींजीवित है मिट्टि से चरने वालों से,
जीवित है उसे फूँक सोना करने वालों से ।
ज्वलित देख पंचाग्निजगत् से विकल भागता योगी ।
धुनी बनाकर उसे तापता अनासक्त रसभोगी ।
रश्मि-दोश की राह यहाँ तम से होकर जाती है,
उषा रोज रजनी के सिर पर चढ़ी हुई आती है ।
और कौन है, पड़ा नहीं जो कभी पाप-कारा में ?
किसके वसन नहीं भींगेवैतरणी की धारा में?

शब्दार्थ :

मही = धरती, संसार। मिट्टी = सांसारिक वासनाएँ। पंचाग्नि = पाँच आग, पाँच विषयों की ज्वाला-शब्द, रूप, रस, गंध, तथा स्पर्श। धुनी बनाकर-धूनी बनाकर, जीवन व्यतीत करने का साधन बनाकर। अनासक्त = निष्काम। रसभोगी = सांसारिक। कारा = बन्धन। वैतरणी = नरक की एक नदी।

प्रसंग:

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में भीष्म पितामह युधिष्ठिर के हृदय पर पड़े पाप के बोझ को अपने उपदेशों के माध्यम से कम करने का प्रयास कर रहे हैं।

व्याख्या:

यह संसार, वासनाओं से डरने वाले व्यक्तियों के कारण स्थिर नहीं है। वह तो उन वासनाओं को फूंककर सोने-सा आकर्षक तथा मूल्यवान बनाने वालों केउन्हें उदात्त निर्मल रूप प्रदान करने वालों के कारण स्थित है। पाँच विषयों की आग कोलता हुआ देखकर योगी संसार से भाग जाता है, किन्तु निष्काम सांसारिक उस पंचाग्नि का जीवन व्यतीत करने का साधन बना देता है। उसका सेवन करता है, किन्तु उसमें आसक्त नहीं होता।अंधेर के देश से गुजर कर ही प्रकाश का देश आता है। संसार की वासनाओं का उपभोग करने से ही उनके ऊपर उठा जा सकता है। उषा का प्रकाश रात के अंधेरे के बाद जाता हैऔर संसार में कौन ऐसा है जो कभी पाप के बन्धन में नहीं पड़ा, जिसने कोई पाप नहीं किया? किसके वस्त्र नरक की वैतरणी नदी से नहीं भीगे? किसने कभी कोई अनुचित कार्य नहीं किया।

विशेष:

(1) अलंकार-और कौन है........वैतरणी की धारा में, में प्रश्न अलंकारहै ।

2) संसार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिससे जीवन में पाप न हुआ हो, पर जो इसमें सुधार कर लेता है वही महान है ।

(2)

अन्त नहीं नर-पंथ का, कुरुक्षेत्र को धूल,
आंसू बरसे, तो यही खिले शान्ति का फूल ।
द्वापर समाप्त हो रहा है धर्मराज, देखो,
लहर समेटने लगा है एक पारावार ।
जग से विदा हो जा रहा है काल-खण्ड एक
साथ लिए अपनी समृद्धि की चिता का क्षारा ।
संयुक्त की धूलि में समाधि युग की ही वनी,
वह रही जीवन को आज भी प्रजस्त्र धारा ।
गत ही अचेत हो गिरा है मृत्यु-गोद-वीच,
निकट सनु।य के अनागत रहा रहा पुकार।

शब्दार्थ:

पारावार = सागर जैसा विशाल युग। काल-खण्ड = समय का भाग। क्षार = राख । संयुग = युद्ध । अजस्त्र = निरन्तर । गत = भूतकाल। अचेत = बेहोश, नष्ट। अनागत = भविष्य।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में कवि ने द्वापर युग के समाप्त होने के साथ ही सुन्दर भविष्य की कल्पना की है।

व्याख्या:

हे धर्मराज ! कुरुक्षेत्र की इस राख पर ही मानव जाति का विकास रुकनहीं जायगा, वह तो अभी और आगे बढ़ेगा। अगर यहाँ आँसू बरसे हैं तो यहीं शांति केफूल खिलेंगे।द्वापर समाप्त हो रहा है। द्वापर रूपी सागर अपनी लहरों को, अपने विस्तार को समेट रहा है। समय का एक भाग अपनी समृद्धि की चिता की राख लेकर संसार से विदा हो रहा है। द्वापर में जितनी उन्नति हुई थी, वह सब महाभारत के युद्ध में समाप्त हो गई। इस युद्ध की राख में ही द्वापर की समाधि बन गई है, किन्तु जीवन की धारा अब भी निरन्तर आगे बढ़ रही है। भूतकाल बेहोश होकर मौत की गोद में गिर गया है और शीघ्र ही भविष्य अपनी उन्नति को लेकर आने वाला है, भविष्य मानव को पुकार रहा है।

विशेष:

(1) अलंकार-नहीं नर, कुरुक्षेत्र की, काल खण्ड में अनुप्रास अलंकार है ।

(2) कवि को आशा है कि जहाँ कुरुक्षेत्र में आँसू बरसे हैं यहीं शान्ति के फूल भीखिलेंगे।

(3)

अब तक किन्तु, नहीं मानव है देख सका, श्रृंग चढ़ जीवन की समता-अमरता ।
प्रत्यय मनुष्य का मनुष्य में न दृढ़ अभी,एक दूसरे से अभी मानव है डरता ।
और है रहा सदैव शंकित मनुष्य यह, एक दूसरे में द्रोह-द्वेष-विष भरता ।
किन्तु, अब तक है मनुष्य बढ़ता ही गया, एक दूसरे से सदा लड़ता-झगड़ता ।

शब्दार्थ:

भंग = चोटी, उच्चता। प्रत्यय = विश्वास।

प्रसंग:

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में मनुष्य के आंतरिक भय पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या:

किन्तु मानव उच्चता की चोटी पर चढ़कर मानव-जीवन की इस समानता को तथा उसकी अमरता को नहीं देख पाया है। मानव परस्पर एक-दूसरे से डरता है और किसी पर पूरा विश्वास नहीं करता। मनुष्य एक-दूसरे से शत्रुता तथा ईर्ष्या करता हुआ सभी से शंकित रहा है, सबसे डरता रहा है, किन्तु इस प्रकार के पारस्परिक झगड़े-फसाद के बावजूद भी मनुष्य निरन्तर विकसित होता गया है।

विशेष:

(1) अलंकार-द्रोह द्वेष, सदैव शंकित में **अनुप्रास** तथा लड़ता झगड़ता में **पदमैत्री अलंकार** है।

(2) मनुष्य अपने भय के कारण सभी के प्रति शंकित रहता है, यह उसकी बड़ी दुर्बलता है।

(4)

धर्मराज, वह भूमि किसी कीनहीं क्रीत है दासी,
है जन्मना समान परस्परइसके सनी निवासी ।
है सबको अधिकार सृति कापोषक-रस पीने का,
विविध अभावों से आशंका हो-कर जग में जीने का ।
सबको मुक्त प्रकाश चाहिए,सबको मुक्त समारण,
दाघा-रहित विकास, मुक्तआशंकासों से जीवन।

शब्दार्थ:

क्रीत = खरीदी हुई। जन्मना = उत्पन्न। मृति = मिट्टी। पोषक = शक्ति देने वाला। आशंका = भय।

प्रसंग:

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धत हैं। इन पंक्तियों में कहा गया है कि इस पृथ्वी पर गरीब-अमीर, राजा-रंक सभी का समान अधिकार है।

व्याख्या:

धर्मराज ! यह धरती किसी एक व्यक्ति की खरीदी हुई दासी नहीं है कि जो चाहे वही इसके सुखों का भोग करें । इसमें जन्म लेने वाले सारे प्राणी इस पर

समान अधिकार रखते हैं।सभी को यह अधिकार है कि वे मिट्टी के शक्ति प्रदान करने वाले सुखों का भोग करें और जीवन की सब कमियों से निडर होकर रहें।

सबको आजादी से प्रकाश और वायु का सुख मिलना ही चाहिए। सबको बिना किसी विघ्न के उन्नति करने का अवसर मिलना चाहिए और सबका जीवन भय से मुक्त होना चाहिए।

विशेष:

(1) अलंकार-अभावों से अशंक, पोषक रस पीने, जग में जीने में अनुप्रास अलंकार है।

(2) सभी को उन्नति के समान अवसर और अधिकार मिलने चाहिए तब ही सच्ची शान्ति स्थापित रह सकती है।

(5)

अनायासअनुकूल लक्ष्य कोमानव पा सकता था,
निज विकास की चरम भूमितक,निर्भय जा सकता था ।
तब पैठा कलि-भाव स्वार्थ बन, कर मनुष्य के मन में,
लगा फैलने बरल लोभ काछिपे छिपे जीवन में ।
पड़ा कभी दुष्काल, मरे नर,जीवित का मन डोला,
डर के किसी निभृतकोन से, लोभ मनुजका बोला।

शब्दार्थ-

अनायास = बिना परिश्रम के। चरम भूमि = उच्चतम सीमा। कलि-भाव = कलियुग की दूषित भावना। गरल = जहर। निभृत = छिपे।

प्रसंग-

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में कलियुग के मनुष्य के स्वार्थी होने का कारण स्पष्ट कियाहै ।

व्याख्या-

मानव बिना परिश्रम के किए ही अपने इच्छित उद्देश्य को प्राप्त कर सकता था और अपने विकास की उच्चतम सीमा तक पहुँच सकता था।तब कलियुग की बुरी भावनाएँ स्वार्थ का रूप धारण कर व्यक्ति के मन में घिर आईं और तब धीरे-धीरे जीवन में लोभ का जहर फैलने लगा।

कभी अकाल पड़ा तो उससे बहुत से व्यक्ति मर गए। जीवित बचे व्यक्तियों का हृदय अधीर हो उठा। तभी हृदय के किसी एकान्त कोने से मानव का लोभ जाग उठा और कहने लगा।

विशेष:

(1) अलंकार-मानव पा सकता था में सन्देह, छिपे-छिपे में वीप्सा तथा अनायास अनुकूल में अनुप्रास अलंकार है। (2) मानव जीवन में लोभ का जहर किस प्रकार फैला, यह समझाने का प्रयास कवि ने किया है।

(6)

सह न सकाजो सहज-सुकोमलस्नेह-सूत्र का बन्धन,
दण्ड-नीति के कुलिश-पारा में, अब है बध्द वही जन ।
दे न सका नर को नर जो, सुख-भाग प्रीति से, भय से,
आज दे रहा वही भाग वह, राज-खड्ग के भय से ।
अवहेला कर सत्य-न्याय केशीतल उद्गारों की,
समअ रहा आज भली विध, भाषा तलवारों की ।
इसके बढकर मनुज-वण काओर पतन क्या होगा ?
मानवीय गौरव का बोलोऔर हननक्या होगा।

शब्दार्थ:

कुलित-पाश = कठोर बन्धन। अवहेलना = तिरस्कार । उद्गार = भाव।

प्रसंग:

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में मनुष्यता, प्रेम, भाईचारा के विनाश के दुष्परिणामों से अवगत कराया गया है।

व्याख्या:

जो व्यक्ति प्रेम की डोर का स्वाभाविक और कोमल बन्धन नहीं सह सका, वह आज दंड-विधान के कठोर बन्धन में बँधा हुआ है।व्यक्ति, व्यक्ति के जिस सुख भाग को प्रेम तथा न्याय से नहीं दे सका, वही आज वह राजा की तलवार के भय से दे रहा है।

न्याय और सत्य के पवित्र भावों का तिरस्कार करके व्यक्ति आज तलवारों की भाषा खूब समझता है। तलवार के भय से सब कार्य कर देता है।इससे अधिक मानव की अवनति क्या हो सकती है? तुम्हीं बताओ, मनुष्यता के स्वाभिमान का इससे बढ़कर विनाश और क्या हो सकता है?

विशेष:

(1) अलंकार-सह न सका जो सहज सुकोमल स्नेह सूत्र में अनुप्रास अलंकार है।

(2) आज का मनुष्य इतना उच्छृंखल हो गया है कि दण्ड का भय भी उसे नहीं रहा। यह मानवीय गौरव का पतन ही कहा जायेगा।

(7)

नृप चाहिए, जो कि उन्हें, पशुओं की भाँति चलाये,
रखे अनय से दूर, नीति-नय, पग-पग पर सिखलाये !
नृप चाहिए नरों को, जोसमझे उनकी नादानी,
रहे छींटता पल-पल, पारस्परिक कलह पर पानी।
नृप चाहिए, नहीं तो आपसमें, वे खूब लड़ेंगे,
एक दूसरे के शोणित मेंलड़कर डूब मरेंगे
राजतन्त्र द्योतक है नर कीमलिन, निहीन प्रकृति का,
मानवता की ग्लानि औरकुत्सित कलंक संस्कृतिका।

शब्दार्थ:

कलह पर पानी छींटता रहे = परस्पर के झगड़ों का शान्त करता रहे। घातक – प्रकाशक। निहीन = गिरी हुई। प्रकृति = स्वभाव। कुत्सित = भद्दा।

प्रसंग:

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में कवि ने राजा की आवश्यकता के कारण बताये हैं।

व्याख्या:

मनुष्यों को ऐसा राजा चाहिए जो उनकी मूर्खताओं को समझे तथा उनके आपसी झगड़ों को निरन्तर शान्त करता रहे।यदि राजा नहीं होगा तो सब लोग आपस में लड़ते-मरते रहेंगे तथा एक दूसरे को मारकर खूब खून बहायेंगे।

अतः यह स्पष्ट है कि राजतन्त्र से मनुष्यों की नीच प्रवृत्ति तथा मलिन स्वभाव का ज्ञान होता है, मनुष्यता की निन्दनीय अवस्था तथा मानव-संस्कृति के भद्दे कलंक का ज्ञान होता है।

विशेष:

(1)अलंकार-पल-पल में पुनरुक्तिप्रकाशतथा पल पारस्परिक,पर पानी,कुत्सित कलंक में अनुप्रास अलंकार है।

(2) राजतंत्र से मनुष्य की निम्न प्रवृत्ति और मलिन स्वभाव का ज्ञान होता है।

(8)

जो कुछ है, उसका रक्षण हीध्येय एक दासन का।
नयी भूमि की ओर न यह, सकता प्रवाह जीवन का ।
कही रूढ़ि-विपरीत बात, कोई न बोल सकता है ।
नया धर्म का भेद मुक्त, होकर न खोल सकता है ।
ग्रीवा पर दुशील तंत्र कीशिला भयानक धारे ।
धूम रहा है मनुज जगत् में, अपना रूपबिसारे।

शब्दार्थ:

नई-भूमि = नई दिशा, नवीनता। ग्रीवा = गर्दन। दुःशील तंत्र = बुरा शासन।

प्रसंग:

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में राजतंत्र की सीमाओं का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या-

शासन का उद्देश्य यह है कि जो कुछ पुराना चला आ रहा है, उसकी रक्षा की जाए। अब शासन के भय से जीवन की धारा नई दिशा की ओर जा ही नहीं सकती। जीवन में नया विकास हो ही नहीं सकता।शासन के भय से कोई भी व्यक्ति रूढ़ियों का विरोध नहीं कर सकता तथा आजादी के साथ जनता के सामने नए विचार नहीं रख सकता।

अब मनुष्य अपनी गर्दन पर बुरे शासन की भयंकर चट्टान रखे हुए, अपने वास्तविक स्वरूप को भुलाए संसार में घूम रहा है।

विशेष: (1) अलंकार-विपरीत बात, भेद मुक्त में अनुप्रास अलंकार है।

(2) राजतंत्र में प्राचीन की रक्षा का धर्म ही प्रधान रहता है।

(9)

जब तकस्वार्थ-शैल मानव केमन का चूर न होगा ।
तब तक नर-सनाज से असिधरप्रहरी दूर न होगा ।
नर है विकृत अतः नरपतिचाहिए धर्म-ध्वद-धारी,
राजतंत्र है हेय, इसीसेराजधर्म है भारी ।
धर्मराज, संन्यास खोजनाकायरता है मन की,

है सच्चा मनुजत्वग्रन्थियाँसुलमाना जीवन की ।
दुर्लभ नहीं मनुज के हित,निज वैयक्तिक सुख पाना,
किन्तु, कठिन है कोटि-कोटिमनुजों कोसुखी बनाना।

शब्दार्थ:

स्वार्थ-शैल = स्वार्थ का पहाड़। असिधर = तलवार धारण करने वाला, राजा। विकृत = बुरा। हेय = क्षुद्र । ग्रन्थियाँ = गाँठे, समस्याएँ। वैयक्तिक = व्यक्तिगत।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में

भीष्म पितामह युधिष्ठिर को सावधान कर रहे हैं कि सिंहासन से संन्यास लेना कायरता है।

व्याख्या:

जब तक मनुष्य के हृदय का स्वार्थरूपी पहाड़ बिल्कुल धूल में नहीं मिल जायेगा और उसकी स्वार्थपरता पूरी तरह नष्ट नहीं हो जायेगी, तब तक समाज से तलवारधारी यह चौकीदार (राजा) दूर नहीं हो सकता।

लोग कहते हैं कि सामान्य व्यक्ति बुरा है, इसलिए उसकी रक्षा के लिए धर्मात्मा राजा चाहिए। इसी से सिद्ध होता है कि प्रधान-राजतन्त्र नहीं, राजा का धर्म है। राजा अगर पापी हो तो प्रजा को और भी कष्ट होगा। इसलिए तुम्हें भी उचित धर्म अपनाना चाहिए।

धर्मराज ! संन्यास ग्रहण करना, मन की कायरता है। सच्ची मनुष्यता तो मानव जीवन की समस्याएँ सुलझाने में है।मनुष्य के लिए व्यक्तिगत सुख प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है, किन्तु करोड़ों व्यक्तियों को सुखी बनाना बहुत मुश्किल है।

विशेष: (1) अलंकार-स्वार्थ शैल में रूपक तथा कोटि-कोटि में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

(2) युधिष्ठिर को समझाया गया कि सच्ची मानवता मानव जीवन की समस्याएँ सुलझाने में है, संन्यास लेने में नहीं।

(10)

धर्मराजक्या यती भागता, कभी गेह या वन से ?
सदाभगता फिरता है वह, एक मात्र जीवन से ।
वह चाहता सदैव मधुर रस,नहीं तिक्त या लोना ।

वह चाहता सदैव प्राप्ति ही,नहीं कभी कुछ खोना ।
प्रमुदित पाकर विजय, पराजयदेख खिन्ना होता है,
हँसता देख विकास, ह्रास कोदेख बहुतरोता है।

शब्दार्थ: तिक्त = कड़वा। लोना = नमकीन। ह्रास = पतन ।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग स उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में

मनुष्य की प्रवृत्तियों का उद्घाटन किया गया है।

व्याख्या:

धर्मराज ! संन्यासी घर से या वन से नहीं भागता, वह तो एकमात्र जीवन की विपत्तियों से बचने के लिए भागता फिरता है।वह हमेशा सुख ही चाहता है। दुःख या विपत्ति से बचना चाहता है। यह सदैव लाभ को ही कामना करता है, हानि से डरता रहता है।

जब उसे विजय प्राप्त होती है तो वह प्रसिद्ध होता है और जब वह पराजित होता है तो दु:खी हो उठता है। अपनी उन्नति देखकर खुश होता है और पतन देखकर बहुत रोता है।

विशेष: (1) अलंकार-क्या यही भागता में प्रश्न तथा भागता फिरता में पदमैत्री अलंकार है।

(2) मनुष्य विपत्तियों से बचने के लिए संन्यास ग्रहण कर वन में जाता है। वह दुःखों से सदा भयभीत रहता है।

(11)

जीवन उनकानहीं युधिष्ठिर,जो उससे डरते हैं,
वह उनका, जो चरण रोप,निर्भय होकर लड़ते हैं ।
यह पयोधि सबका मुख करता, विरत लवण-कटु जल से,
देता सुधा उन्हें, जो मयते, हमें मन्दराचल से ।
बिना चढ़े फुनगी पर जो, चाहता सुधा फल पाना,
पीना रस-पीयूष, किन्तु,यह मन्गार नहीं उठाना;
खारा रह जीवन-समुद्र कोवही छोड़ देता है,
सुधा-सुरा-मणि-रत्न-कोप से, पीठ फेरलेता है।

शब्दार्थ:

चरण रोप = पांव जमाकर। पयोधि = सागर। विरत = उदासीन । लवण-कटु = नमक के कारण कड़वा पानी, विपत्तियाँ। मन्दराचल = वह पर्वत जिससे

देव-दानवों ने सागर-मन्थन किया था, परिश्रम। फुनगी = वृक्ष का सिरा, शाख का ऊपरी भाग। रस-पीयूष = रस का अमृत। मन्दर = पर्वत का नाम, विपत्ति। सुधा-सुरा = सुख-दुःख।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धत हैं। इन पंक्तियों में मानव जीवन में श्रम और संघर्ष की महत्ता प्रतिपादित की गई है।

व्याख्या:

हे युधिष्ठिर ! जीवन के सुख उसे प्राप्त नहीं होते, जो उससे भयभीत रहता है। वह तो उन्हें सुख देता है, जो पाँव अड़ाकर, निर्भय हो उनसे संघर्ष करते हैं।सागर का जल नमक से कड़वा होता है और जो भी उसे पीता है, सागर के प्रति हो जाता है, किन्तु देव-दानवों ने उसे मथकर ही उससे अमृत निकाला था। उसीप्रकार जीवन की विपत्तियाँ देखकर सब घबरा जाते हैं और उससे उदासीन हो जाते हैं, किन्तु जो परिश्रम से उसके साथ संघर्ष करता है, उसे आनन्द प्राप्त होता है।

जो व्यक्ति वृक्ष की शाखाओं की चोटी तक चढ़े बिना ही अमृत भरे फल पाना चाहता है । अमृत का पान तो करना चाहता है, किन्तु मन्दराचल नहीं उठा सकता, जीवन में सुख तो पाना चाहता है, किन्तु संघर्ष नहीं करना चाहता।

वही व्यक्ति जीवन-रूपी सागर को खारा एवं दुःखदायी कहकर त्याग देता है और यहाँ के सुख-दुःख (अमृत और शराब) तथा सम्पत्ति (मणि-रत्न) कोष को भी हाथ से खो बैठता है।

विशेष: (1) अलंकार-सुधा सुरा में अनुप्रास अलंकार है।

(2) परिश्रमी व्यक्ति ही जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त कर पाता है, यह सीख युधिष्ठिर को दी गई है।

(12)

कहाँ वाटिकावह रहती जो, सतत प्रफुल्ल, हरी है?
व्योम-खण्डवह कहाँ,कर्न-रज जिसनें नहीं भरी है?
वह तो भाग छिपा चिन्तन में, पीठ फेर कर रण से,
विदा हो गये, पर, क्या इससे, दाहक दुःख भुवन से?
और कहे, क्या उसे, कर्तव्य नहीं करना है?
नहीं कम कर सही सीख से, क्या न उदर भरना है।

शब्दार्थ: वाटिका = बाग। प्रफुल्ल = फूलों से युक्त । कर्म-रज = कर्म की धूल। उदर = पेट।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में युधिष्ठिर को उपदेश दिया गया है कि संन्यास लेना तो संघर्ष से दूर भागना है।

व्याख्या:

संसार में ऐसा कोई भी बाग नहीं है जो सदैव फूलों से युक्त तथा हरा-भरा रहता है। जीवन रूपी आकाश का कोई भी भाग ऐसा नहीं है जो कर्म-रूपी धूल से भरा हुआ न हो। जीवन में दुख भी है और परिश्रम भी है।

संन्यासी तो जीवन के युद्ध से भागकर ज्ञान में लीन हो गया है, किन्तु क्या इससे संसार के सारे दुःख दूर हो जाते?और वह स्वयं ही बताए कि क्या उसका अब कोई कर्त्तव्य नहीं रहा? उसे कम से कम भीख माँगकर अपना पेट तो भरना है।

विशेष:

(1) अलंकार-वाटिका वह, दाहक दुख, कहे क्या में अनुप्रास तथा पूरेछन्द में प्रश्न अलंकार है।

(2) भारत देश में ही नहीं सारे विश्व में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ सुख ही सुख हो, कवि यही कहना चाहता है।

(13)

दीपकका निर्वाण बड़ा कुछ, श्रेय नहीं जीवन का,
है सद्धर्म दीप्त रख उसको, हरना तिमिर भुवन का ।
भ्रम रही तुमको विरक्ति जो,वह अस्वस्थ, अबल है,
अकर्मण्यता की छाया, वहनिरे ज्ञान का छल है ।
बचो युधिष्ठिर, कहीं डुबो देतुम्हें न यह चिन्तन में,
निष्क्रियता का धूम भयानक, भर न जाय जीवन में।

शब्दार्थ: निर्वाण = बुझाना। दीप्त रख = जलता हुआ रखकर। तिमिर = दुःख का अंधेरा। अस्वस्थ = अनुचित। अकर्मण्यता = कर्म-हीनता, आलस्य। निष्क्रियता = जड़ता।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में युधिष्ठिर को सावधान किया गया है कि अज्ञानता कहीं अन्धकार में न ढकेल दे।

व्याख्या: जीवन के दीपक को बुझा देना-जीवन का सच्चा उद्देश्य नहीं है। उसको जलता हुआ देखकर संसार के दुःख के अन्धकार को नष्ट करना ही मानव का सच्चा धर्म है।तुम जिस विराग के कारण अज्ञान में पड़ गए हो, वह निर्बल तथा हानिकारक है। वह तो आलस्य का रूप है तथा ज्ञान का धोखा।

हे युधिष्ठिर! अपने को बचाओ। देखना, कहीं तुम्हें यह चिन्तन अज्ञान के अन्धकार में न डुबा दे। कहीं तुम्हारा जीवन जड़ता के धुएँ से भरकर अज्ञान-युक्त न हो जाए।

विशेष: (1) अलंकार-अस्वस्थ अबल, भयानक भर में अनुप्रास अलंकार है।

(2) यहाँ निष्क्रियता की आलोचना की गई है।

(14)

कलुष निहित, मानो, सच ही हो, जन्म-लाभ लेने में,
भुज से दुख का विषम भार, ईषपल्लधु कर देने में ।
गन्ध, रूप, रस, शब्द, स्पर्श,मानो, सचमुच, पातक हों ।
रसना, त्वचा, घ्रण, दृग, धृति, ज्यों मित्र नहीं, धागत हों ।
मुकित-पन्थसुलता हो, मानो,सचमुच, आत्म-हनन से,
सुलभ नहीं जीवन से ।
मानो, निखिल सृष्टि यह कोई, आकस्मिक घटना हो,
जन्म-सत्य उद्देश्य मनुज का,मोनो नहीं सना हो ।
धर्मराज, क्या दोष हमारा, धरती यदि मखर है?
भेजागया, यहाँ पर आया, स्वयं न कोई नर है।

शब्दार्थ: कलुष=पाप; निहित हो=छिपा हो; ईषल्लघु=बहुत कम; त्वचा=खाल; घ्राण=नाक; श्रुति=कान;

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में जगत के नाशवान होने से मनुष्य को अकर्मण्य न होने का संदेश दिया गया है।

व्याख्या: उसके लिए तो मानो सचमुच ही जन्म का सुख लेने में पाप छिपा है और अपनी शक्ति से दुखों को कम करना भी पाप है।गन्ध, सौन्दर्य, रस, शब्द और स्पर्श-सब पाप ही हैं; और जिह्वा, त्वचा, नासिका, आँखें और कान हमारे मित्र नहीं, वरन् शत्रु हैं।

मानो सचमुच अपनी आत्मा का हनन करने से ही, अपनी इच्छाओं को मारने से ही मुक्ति का मार्ग खुलता है और जीवन में रहने से जीवन का सुख प्राप्त

नहीं हो सकता।मानो सारा संसार ही कोई अचानक ही घटित हुई घटना है तथा मानव के जन्म के साथ उसके जीवन का कोई उद्देश्य नहीं मिला हुआ है।

धर्मराज! यदि संसार नाशवान है तो इसमें हमारा क्या दोष है? हमें तो यहाँ भेजा गया । काई व्यक्ति अपने आप तो यहाँ आया नहीं है। फिर हमें इसकी क्या चिन्ता कि संसारनाशवान है या नहीं।

विशेष: (1) अलंकार-क्या दोष .... नश्वर है में प्रश्न अलंकार है।

(2) यहाँ पाँचों इन्द्रियों को मानव की शत्रु कहा गया है।

(15)

क्योंकि भुजाजो कुछ लाती,मन भी उसको पाता है,
निरा ध्यान, भुज क्या? मन को भी, दुर्लभ रह जाता है ।
सफल भुजा वह, मन को भी जो, भरे प्रमोद लहर से ।
सफल ध्यान, अंकन असाध्य, रह जाय न जिसका कर से ।
जहाँ भुजा का एक पन्थ हो,अन्य पन्थ चिंतन का
सम्यक् रूप नहीं खुलता उम्र, द्वन्द्व-ग्रस्त जीवन का ।
केवल ज्ञानमयी निवृत्ति से, द्विधा न मिट सकती है,
जगत छोड़ देने से मन की, तृपा न घट सकती है ।
बाहर नहीं शत्रु, छिप जाये, जिसे छोड़ नर वन में,
जाओ जहाँ, वहीं पाओगे, इसे उपस्थितमन में।

शब्दार्थ: प्रमोद = आनन्द। अंकन = निर्माण। द्वन्द्व ग्रस्त = संघर्षमय। निवृत्त = संन्यास।

प्रसंग: प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र' के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में कर्म और विचार में समन्वय आवश्यक बताया गया है।

व्याख्या:

क्योंकि भुजा जो कुछ भी प्राप्त करती है, उसे मन भी प्राप्त कर लेता है। कोरा ध्यान भुजा के लिए तो क्या, मन को प्राप्त नहीं होता। ध्यान करना, मन के लिए बड़ा कठिन होता है। वह भुजा सफल है जो मन को भी आनन्द की धारा से सींच देती है। वही ध्यान सफल है, जिसे कार्य-रूप में परिणत किया जा सकता है।

जहाँ भुजा तो एक मार्ग पर चलती हो और चिन्तन दूसरे मार्ग पर, जहाँ कर्म और विचार में समन्वय नहीं है, वहाँ इस संघर्षमय जीवन का वास्तविक रूप

स्पष्ट नहीं होता है । केवल ज्ञानमूलक संन्यास से यह संघर्ष दूर नहीं हो सकता। संसार को त्याग देने से मन की इच्छाएँ शान्त नहीं हो जाती।व्यक्ति के शत्रु बाहर संसार में नहीं हैं, जिन्हें छोड़कर व्यक्ति जंगल में जा छिपे। वे शत्रु तो मन में रहते हैं। इसलिए जहाँ भी जाओगे, व तुम्हारे साथ लगे रहेंगे।

विशेष: (1) अलंकार-अंकन असाध्य, जाओ जहाँ में अनुप्रास अलंकार है।

(2) व्यक्ति के शत्रु बाह्य संसार में नहीं अपितु व्यक्ति के मन में ही निवास करते है ।

(16)

मत सोचोदिन-रात पाप में, मनुज निरज होता है,
हाय, पाप के बाद वही तो, पछताता, रोता है ।
यह कन्दन, यह अश्रु मनुज की, आशा बहुत बड़ी है,
बतलाता है यह, मनुष्यता, अब तक नहीं मरी है ।
सत्य नहीं पाता की ज्वाला, में मनुष्य का जलना,
सच है बल समेट कर उसका, फिर आगो को चलना ।
नहीं एक अवलम्ब जगत की, आभा पुण्य-व्रती की
तिमिर-व्यूह में फँसी किरण भी, आशा है धरती की ।
फूलों पर आँसू के मोतीऔर अश्रु में आशा,
मिट्टी के जीवन की छोटी,नपी-तुलीपरिभाषा।

शब्दार्थ :

क्रन्दन = रोना। अवलम्ब = सेहरा । तिमिर-व्यूह = पाप के अन्धकार का जाल।

प्रसंग:

प्रस्तुत पंक्तियाँ रामधारी सिंह 'दिनकर'द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र'के सप्तम सर्ग से उद्धृत हैं। इन पंक्तियों में जीवन को परिभाषित करते हुए पश्चाताप के आँसुओं में ही आशा के बीज छिपे होने का संदेश दिया गया है।

व्याख्या :

यह मत सोचो कि व्यक्ति दिन-रात पाप में लीन रहता है। हाय ! यह भी तो सोचो कि पाप करने के बाद वही पश्चाताप करता तथा दुःखी होता है।यह रोना और ये आँसू ही मनुष्यता की महान् आशा लिये है, क्योंकि इन्हीं से तो यह ज्ञात होता है कि अभी मनुष्यता का नाश नहीं हुआ है, तभी तो व्यक्ति पाप करके रोता है।

पाप की आग में मनुष्य का जलना सत्य नहीं है, वरन् शक्ति का संग्रह कर पाप से आग बढ़ना ही सत्य है। इसी को सत्य समझकर शक्तिशाली बनो।केवल धर्मात्मा व्यक्ति का ज्ञान ही संसार का सहारा नहीं है, वरन् पाप के अन्धकार में फँसे संसारवासियों की आशा की किरण भी धरती का बहुत बड़ा सहारा है। यह आशा न हो तो मानवता का उद्धार असम्भव हो जाय।

संसार के जीवन की यह एक छोटी-सी परिभाषा है कि-वह फूलों पर बिखरे आँसुओं के मोती के समान है: क्योंकि हँसी के फलों में दुःख के आँसू छिपे रहते हैं तथा आँसुओं में जीवन के सुख की आशा है। मानव-जीवन में सुख और दुःख-दोनों ही क्रम से आते हैं और एक में दूसरा छिपा रहता है।

विशेष: (1) अलंकार-बहुत बड़ी, बाद वही, और अश्रु में आशा में अनुप्रास अलंकार है।

(2) मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख का चक्र चलता रहता है और सुख में दुःख तथा दुःख में सुख छिपा रहता है।

4.6. सारांश:

कथासार जो व्यक्ति पाप की खाई में गिरकर भी अपने जीवन को सुधारने में, उसे ऊपर उठाने लगा हुआ है, वह करोड़ों संन्यासियों से अच्छा है। सभी से पाप होता है, किन्तु उसे धो बालने का प्रयास करने वाला ही महान है। यही बात युधिष्ठिर को ज्ञात हुई है और उसी के भावों को दुहराते हुए भीष्म बोले- 'कुरुक्षेत्र की यह राख मानव का अन्त नहीं है। यहीं शान्ति के फूल खिलेंगे। इस मट में मानव का भाग्य नहीं जल गया। मनुष्यता की आशा मनुष्य में है, वन में नहीं। संन्यास ले लेने से मनुष्यता का भला नहीं हो सकता। मानवता की सरिता का विकास तो वासना और विरक्ति के दो किनारों के बीच हुआ है। मनुष्यता-त्याग और तप से महान् है। सभी मनुष्यों को समान रूप से जीने का अधिकार है, किन्तु मनुष्य अभी तक इस सत्य को नहीं जान सका है और न एक-दूसरे पर विश्वास ही कर सका है'। यदि मानव-समाज का कल्याण करना है तो राज्य स्वीकार करो और योगियों की भाँति रहो।

यह धरती किसी एक की सम्पत्ति नहीं है। यहाँ सबको समान रूप से सुख भोगने का अधिकार है। सभी महान् बनना चाहते हैं, किन्तु मानवता की इस उन्नति की राह में बड़ी बाधाएँ हैं। जब तक सबके जीवन में समानता नहीं होगी, तब तक संसार का विकास सम्भव नहीं है। ईश्वर ने धरती पर असंख्य सुखों की सृष्टि की है। मनुष्य के पास शारीरिक तथा मानसिक शक्तियाँ हैं। फिर भी वह

क्यों उन सुखों को प्राप्त करने में असमर्थ है? मनुष्य ने सारे सुख अपने परिश्रम से प्राप्त किये हैं। प्रकृति सदैव मनुष्य के परिश्रम के सम्मुख हारती रही है। भाग्यवादी होकर बैठे रहने से जीवन का विकास नहींहो सकता। एक व्यक्ति पाप से धन का संचय करता है और दूसरा भाग्यवाद का सहारा – लेकर उसका भोग करता है।

यहाँ कौन किसका राजा है और कौन किसकी प्रजा? मनुष्य ने अज्ञान में पड़कर स्वयं ही यह विभाजन किया है। कहते हैं कि पुराने जमाने के लोगों का धरती पर भी एक-सा अधिकार था। सब लोग मेहनत करते थे और समान रूप से उसका भोग करते पा सभी का सुख-समाज का सुख था। कोई संचय की चिन्ता नहीं करता था। पहले राज्य के नियमों की बाधाएँ पग-पग पर नहीं खड़ी रहती थीं।

तभी व्यक्ति के हृदय में स्वार्थ भावना उत्पन्न हुई। सब लोग संचय के लोभ में पड़ गए और तब से लूट-मार और शोषण का आरम्भ हो गया। तब तलवार की शक्ति का उदय हुआ और तलवारधारी मनुष्य जनता का शासक बन गया और जो प्रेम के बन्धन में रह सके, अब तलवार के बन्धन में रहने लगे। राजतन्त्र मनुष्य के परस्पर वैर औरक्षुद्रता का प्रतीक है। यदि सब स्वयम् प्रेम से रह सकते तो राजा की आवश्यकता न होती।

राजतन्त्र का उद्देश्य-दुर्गुणों का नाश था, किन्तु उसके कारण अब विचार भी परतन्त्र हो गए हैं। कृष्ण और विदुर भी राजनीति के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते। उसके कारण अब नई प्रगति सम्भव नहीं है। जब तक मनुष्य की स्वार्थ-भावना नष्ट नहीं होती । तब तक राजतन्त्र नष्ट नहीं हो सकता।

धर्मराज! संन्यास लेना तो मन की कायरता है। व्यक्तिगत सुख प्राप्त करना आसान है, किन्तु सब मनुष्यों को सुखी बनाना बड़ा कठिन है। तुम्हें अगर वन में शान्ति मिल भी जाये तो संसार को इससे क्या लाभ होगा? अगर सब लोग तुम्हारा आदर्श स्वीकार कर वन में चले जाएँ तो योगियों को वहाँ से भी भागना पड़ जायेगा। संन्यासी जीवन को अपने अनुरूप देखना चाहता है, किन्तु यह कैसे सम्भव है?

यह संसार उसी को सुख देता है, जो इससे संघर्ष करता है। जो इसे त्याग देता है, उसे सुख की प्राप्ति नहीं होती। संन्यासी संसार से डरकर भाग खड़ा होता है और कल्पना के संसार में खो जाता है, किन्तु सच्चा मार्ग कर्म का मार्ग है। तुम्हारा संन्यास तुम्हें जीवन से दूर ले जायेगा। जीवन रूपी दीपक को बुझा देना

अनुचित है। यह विरक्ति संसार को नश्वर कहकर मृत्यु को जीवन बना देती है। इन्द्रियातीत को यह सत्य बताती है और प्रत्यक्ष को असत्यऔर जो अनित्यता को सत्य मानता है, वह कर्म कैसे करेगा और संसार का कल्याण कैसे करेगा? कर्मयोगी धरती को सुन्दर और आकर्षक बनाता है। वह जीवन भर दूसरों का कल्याण करता रहता है। यदि धरती नश्वर है तो इसमें हमारा क्या दोष? हग तो यहाँ किसी उद्देश्य से ही भेजे गए हैं। ध्यान से भुजा को क्या लाभ होता है? किन्तु भुजा जो कमाती है, उससे मन को सन्तोष होता है। यदि संन्यास से दुःख कट जाते हों तो सभी को संन्यास का उपदेश दो।

हे धर्मराज! तुम अपनी तपस्या से सारे संसार के दुःखों को शान्त करो, संसार के दुःखों की ओर देखो, वन की ओर नहीं। तुम्हें गीता संसार की ओर बुला रही है। तुम संसार में ऐसे रहो कि तुम्हें कोई पाप न छू जाय। सबको उसी प्रकार का सात्विक जीवन व्यतीत करना सिखाओ, पाप में जलना ही सत्य नहीं है, वरन् उसे जीतते हुए आगे बढ़ना ही सत्य है। आशा का दीपक जलाकर आगे बढ़ते चलो। तुम्हें अवश्य सफलता मिलेगी और संसार में आत्म-बलिदान की महिमा प्रतिष्ठित होगी।

डॉ. सूर्य कुमारी. पी.

5. रश्मिरथी

उद्देश्य :

इस इकाई के अंतर्गत आप 'रश्मिरथी' नामक खंडकाव्य के चतुर्थ सर्ग को पढ़ने जा रहे हैं। इस काव्य के कवि-रामधारी सिंह दिनकर है । इस काव्य का अध्ययन करने के बाद आप काव्य का सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे । इस काव्य में आप महाभारत के उपेक्षित पात्र दान वीर कर्ण के चरित्र के बारे में जानेंगे । कर्ण के चरित्र के अलावा राष्ट्रवाद के बारे में तथा दलित मुक्ति चेतना के स्वर की पहचान भी कर सकेंगे ।

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 काव्यकार का परिचय (रामधारी सिंह दिनकर)
5.3 रश्मिरथी काव्य का परिचय
5.4 सारांश
5.5 बोध प्रश्न
5.6 संदर्भ सहित व्याख्या

5.1 प्रस्तावना :

आप इस इकाई के अंतर्गत 'रश्मिरथी' नामक खंडकाव्य के चतुर्थ सर्ग को पढ़ने जा रहे है। आप को ज्ञात हो गया होगा कि हिंदी का यह काव्य अति महत्वपूर्ण काव्य है । इस काव्य के कवि – रामधारी सिंह दिनकर है । इस काव्य में दुःख, पीड़ा, शोषण एवं तिरस्कार मय जीवन व्यतीत करने वाले दान वीर कर्ण को प्रधान पात्र के रूप में चित्रित किया गया है । कवि के द्वारा कर्ण को महाभारतीय कथानक से ऊपर उठाने का प्रयास किया गया है । सामाजिक और पारिवारिक संबंधों को नये सिरे से जाँचा गया है। जैसे गुरु-शिष्य के संबंध, अविवाहित मातृत्व, विवाहित मातृत्व, धर्म, अधर्म, छल, प्रपंच आदि के बारे में सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया गया है । कवि के शब्दों में कहा जाया तो कर्ण-चरित्र का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।

5.2 काव्य कार दिनकर का परिचय :

हिंदी के ओजस्वी कवि रामधारी सिंह दिनकर जी का जन्म सन् 1908 में बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में एक सामान्य किसान परिवार में हुआ था । दिनकर जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ और वीर रस के कवि के रूप में प्रसिद्ध है। राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं क्रांतिकारी विचारधारा इनके साहित्य की विशेषताएँ है। इन पर गाँधी जी का प्रभाव देख जा सकता है । शिक्षा के दौरान गाँधी जी के द्वारा चलाए गए आंदोलनों में वे सक्रिय रूप से भाग लेते रहे न केवल भाग लिया बल्कि ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों को भी सहा । 'उर्वशी' नामक काव्य के लिए इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। रेणुका, हुँकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा, कोयल और कवित्व, नील कुसुम, आत्मा की आँखें, मिट्टी की ओर, अर्धनारीश्वर, रेती के फूल, संस्कृति के चार अध्याय आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है। इन का निधन 28 अप्रैल 1974 में हुआ ।

5.3 रश्मिरथी काव्य परिचय :

रश्मिरथी एक सर्ग बंद प्रबंध काव्य है जिसमें सात सर्ग है । इस काव्य का प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था । इसमें कर्ण के चरित्र के सभी पक्षों का सजीव चित्रण किया गया है। 'रश्मिरथी' में दिनकर ने कर्ण को महाभारतीय कथानक से ऊपर उठाने का प्रयास किया है । कर्ण को नैतिकता और विश्वसनीयता की नयी भूमि पर खड़ा कर उसे गौरव से विभूषित कर दिया है। इस काव्य में दिनकर जी ने सारे सामाजिक और पारिवारिक संबंधों को नये सिरे से जाँचा है। जैसे गुरु-शिष्य के संबंध, अविवाहित मातृत्व, विवाहित मातृत्व, धर्म, अधर्म, छल, प्रपंच आदि । कवि इस काव्य में युद्ध में भी मनुष्य के ऊँचे गुणों की पहचान करते है और यह सन्देश देता है कि जन्म-अवैधता से कर्म की वैधता नष्ट नहीं होती। अपने कर्मों से मनुष्य मृत्यु-पूर्व जन्म में ही एक और जन्म ले लेता है। अतः मूल्यांकन योग्य मनुष्य का मूल्यांकन उसके वंश से नहीं, उसके आचरण और कर्म से ही किया जाना न्यायसंगत है। इस काव्य में राष्ट्रवाद के साथ-साथ दलित मुक्ति चेतना का भी स्वर है।दिनकर के अपने शब्दों में कर्ण-चरित्र का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है।

इस काव्य में घटनाओं की अपेक्षा चरित्रों की प्रधानता है। इस काव्य की रचना चरित्र विशेष के व्यक्तित्व को उजागर करने, मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से लिखा गया है। कवि का यह उद्देश्य ही रहा है कि युगों से उपेक्षित कर्ण के चरित्र का उद्धार करना। इस लिए कवि इस काव्य की भूमिका में लिखते हैं कि- "यह युग दलितों और उपेक्षितों के उद्धार का युग है। अतएव या बहुत स्वाभाविक है कि राष्ट्रभारती के जागरूक कवियों का ध्यान उस चरित्र की ओर जाय, जो हजारों वर्षों से हमारे सामने उपेक्षित एवं कलंकित मानवता का मूक प्रतीक बनकर खड़ा है। कर्ण चरित्र का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का ही प्रयास है और मुझे संतोष है कि इस प्रयास में मैं अकेला नहीं, अपने अनेक सुयोग्य सहकर्मियों के साथ हूँ"।

ग्रंथ के शीर्षक से भी यह बात स्पष्ट हो जाता है कि 'रश्मिरथी' शीर्षक का तात्पर्य इस काव्य के प्रधान पात्र कर्ण पर निर्भर हैं। यश के रश्मि रथ पर चढ़कर दुःख, पीड़ा, शोषण एवं तिरस्कार मय जीवन व्यतीत करने वाले दान वीर कर्ण को कवि ने प्रधान पात्र के रूप में चित्रण किया है। कवि ने कर्ण के जीवन में जितनी घटनाएँ घटी है वे सभी कर्ण के व्यक्तित्व को किसी न किसी रूप में उजागर करती है। जो भी चरित्र आए हैं और उनका जितना भी चित्रण किया गया है उन सब का उद्देश्य कर्ण के चरित्र को उजागर करना ही रहा है। फिर भी इस काव्य में कर्ण का पूरा चित्रण तो नहीं आया है। कर्ण के जीवन की सभी घटनाएँ इस में चित्रित नहीं हुई है। केवल उतनी ही घटनाओं का चित्रण किया गया है जो कर्ण को अंधकार से प्रकाश में लाने के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से देखा जाए तो 'रश्मिरथी' को महाकाव्य तो नहीं कहा जा सकता किंतु खंडकाव्य के रूप में इसे देखा जा सकता है।

1.कथा सार (चतुर्थ सर्ग) :-

पर, जाने क्यों, नियम एक अद्भुत जग में चलता है,
भोगी सुख भोगता, तपस्वी और अधिक जलता है।

संसार का यह कैसा अद्भुत नियम है कि पापी व्यक्ति सुख भोगता है और तपस्वी व पुण्यवान व्यक्ति दुःख पाता है, जो वीर जितना ही व्रत पर अड़ता है, उसके आगे उतनी ही कड़ी विपत्तियाँ आती है। फिर भी पाप, असत्य अभिनंदनीय नहीं माने जा सकते। प्रकाश की रेखा तो वीरों के आस-पास ही मुस्कुराती है। संसार को आलोक देने वाले तो वीर, तपस्वी ही हुआ करते हैं। यों तो सभी अपने को बड़ा

समझते हैं, सभी त्यागी और वीर बताते हैं, किंतु सच्चे वीर की तो कसौटी विपत्ति ही है। जो साधारण समय में धीर रहता है वह धीर नहीं कहलाता, धीरता तो वह है जो संकट के समय में धीर बनकर खड़ा होता है । संकट के बीच जो व्यक्ति त्यागी और वीर बना रहे वही पुरुष कहलाता है । साधारण समय में दान देने वाला क्या दानी होता है ? सच्चा दानी तो वह है जो महँगाई के समय भी दान दे सके। जीवन की संकटपूर्ण परिस्थितियों में जो अपने जीवन की बली दे सके, वही सच्चा वीर है। जीवन में दान का बहुत बड़ा महत्व है । अक्सर लोग दान देकर अपनी महिमा गाते हैं । दान देकर यह कहना कि यह मेरा त्याग है। मैंने अपने अधिकार का त्याग किया है, यह कहना गलत है। वास्तव में हम अपने वस्तु का त्याग नहीं करते और ना ही अपने अधिकारों को छोड़ते है। दान तो जीवन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। दान ना देना अपने ही विकास को रोकना है।

वृक्ष किसी पर कृपा करने के लिए फल नहीं देते हैं। वास्तव में यह एक प्रकृति का गुण है। वृक्ष इस लिए फल देते हैं कि जिससे उसकी डालियाँ नष्ट ना हो और उनके बीजों से नए पौधों का जन्म होसके। ठीक उसी तरह नदी बादल को पानी देकर वह अपने अधिकार का त्याग नहीं करती बल्कि संसार के सभी प्राणियों को जीवन दान देती है। बादलों को पानी देने से वास्तव में नदी का ही लाभ होता है। नदी बादलों को पानी देने से वर्षा के रूप में वही पानी पुनः नदी में सम्मिलित हो जाता है। यानि पुराने पानी की जगह नया पानी आ जाता है और वही पानी स्वच्छ व जीवन प्रदान करने वाला होता है। दान का तो जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध है और जो जितना देता है, वह उतना ही पाता भी है। संसार में सभी महापुरुष दान देकर ही महापुरुष हुए हैं। दधीचि, शिवि, ईसा और मंसूर सभी की जीवनगाथाएँ इसी का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। दान तो संसार का प्रकृत धर्म है।

कर्ण का प्रतिदिन दान देना एक व्रत सा था। बहुत दिनों से कर्ण यह नियम निभाता रहा। सूर्य पूजा करते समय जो कोई भी याचक आता और जो कुछ भी मांगता कर्ण उसे वह पदार्थ बिना हिचकिचाये दिया करता ।

रवि पूजन के समय सामने, जो भी याचक आता था,
मुँह माँगा वह दान कर्ण से, अनायास ही पाता था।

सारे संसार में कर्ण की दानवीरता की कहानी फैल चुकी थी । सभी लोग जानते थे कि कर्ण दुनिया के सबसे बड़े दानी हैं । किसी भी वस्तु को देने से वे

इनकार नहीं करते । धन की बात तो क्या, प्राण भी वे प्रसन्नता पूर्वक दे सकते हैं । कर्ण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि दान देकर गर्व नहीं करते । उल्टे दीन-दुखियों के साथ बड़ी विनम्रता से बातें करते हैं । भिखारियों का ऐसा स्वागत करते हैं, मानों वे भिखारी नहीं बल्कि कोई अधिकारी व्यक्ति है जो अपने अधिकार लेने आए है । ऐसे कर्ण की जयकार सभी करने लगे तथा आपस में बोला करते थे कि –

पहले ऐसा दानवीर धरती पर कब आया था ?
इतने अधिक जनों को किसने यह सुख पहुँचाया था ?

इस तरह चारों ओर कर्ण की दानवीरता का यश फैल गया था । देश के अनेक प्रान्तों में लोग कर्ण का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया करते थे । इस अवसर का लाभ उठाकर भाग्य ने कर्ण के साथ बहुत ही बड़ा व्यंग्य किया था । दान के इसी पुण्य की ओड में मानों भाग्य ने देह धारण कर कर्ण के साथ छल करने आया।

एक दिन कर्ण सूर्य पूजा के समय गंगा के जल में, कमर भर पानी में खड़ा होकर सूर्य का ध्यान कर रहे थे, रवि की रजत रेशमियाँ लहरों पर पढ़कर सुंदर दिख रही थी, किरणों के अमृत को पाकर कमल मुस्कुरा रहे थे, केले के चिकने पत्तों पर बूँदे चमक रही थी । उस समय पूजा के उपरांत जब कर्ण ने अपने आँखों को खोला तो सामने एक ब्राह्मण को पाया । कर्ण ने उस ब्राह्मण से कहा 'माँगो, माँगो तुम्हें क्या चाहिए ? धन, आवास या अन्न ? बोलो ! संभव है, किसी दिन मेघ समुद्र से उदास लौट आये, उन्हें पानी न मिले, पर कर्ण के घर से कोई कभी निराश नहीं जा सकता ।

माँगो माँगो दान, अन्न या वसन, धाम या धन दूँ?
अपना छोटा राज्य या की यह क्षणिक, क्षुद्र जीवन दूँ ?
मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से ।

तुम अपनी पीड़ा कहो, मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा । मेरे जीवन का तो यह व्रत ही रहा है । दान देने के अतिरिक्त और दूसरा सुख मैंने पाया ही क्या ?

'पर का दुःख हरण करने में ही अपना सुख माना,
भग्यहीन मैने जीवन में और स्वाद क्या जाना?

गरीबों का संतोष, उनकी कृतज्ञता और प्रेम यही तो मुझे कुछ मिला है । मैं तो इसी पर गर्व करता हूँ । तुम अपनी बात कहो, कहो!' यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला

– 'हाँ, मैं आपकी दानशीलता की कीर्ति-कहानी सुनकर ही आपके पास आया हूँ। आपके समान तो दानवीर और कोई नहीं है। आप जो एक बार कहते हैं फिर उसे नहीं लौटाते। प्रतिज्ञा की रक्षा के लिए आप सभी संकट भी सहते हैं। आपका वचन कार्य का ही दूसरा नाम है। इसलिए तो लोग आप को शिवी, दधीचि आदि महान दानवीरों की कोटि में गिनने लगे हैं। आप अपने प्रण के आगे प्राणों का मोह नहीं करते। ऐसी बात रही तो निश्चय ही एक दिन स्वर्ग धरती पर भीख माँगने आयेगा।

किंतु भला दान लेकर कोई क्या सुखी हो सकेगा। भाग्य ही सबसे बली है। भाग्य में सुख रहने पर ही सुख होता है। छोटे से पात्र में सागर भी कितना जल भरेगा ! अतः दान में क्या लूँ किस्मत अच्छी रहे तब ना कुछ माँगा जाय। यह सुनकर कर्ण ने कहा- हे प्रिये ! भाग्य कुछ नहीं होता। मैं अनुभव से कहता हूँ कि भाग्य लेख होता नहीं है मनुष्य का, होता है सिर्फ कर्म जो भुजाओं के बल पर होता है। भुजबल के आगे भाग्य भी झुक जाता है और किस्मत पौरुष के आगे हार मान लेती है। मनुष्य भाग्य के नाम पर रोकर कभी महान नहीं हो सकता। खैर इन बातों को जाने दीजिए आप अपनी इच्छा वस्तु माँगिए। सच मानो, मैं आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा। कभी-कभी धरती भी डोलती है, कभी-कभी स्वर्ग लोक भी डोलता है। शूर-वीरों के हृदय भी समर में कभी-कभी डोल उठते (भयभीत) हैं, किंतु सब डोले व हिले किंतु कर्ण का वचन नहीं डोलता।

'मही डोलती और डोलता नभ मे देव-निलय भी,
कभी-कभी डोलता समर में किंचित वीर-हृदय भी।
डोले मूल अचल पर्वत का, या डोले ध्रुवतारा,
सब डोलें पर नही डोल सकता है वचन हमारा।

इस तरह अपने दाता की जाँच करने के बाद वह कुटिल ब्राह्मण कहने लगा- अहा! आपके सामान दानी धन्य है। आपकी उदारता की कहानी प्रत्येक याचक के होठों पर रहती है आप जैसी उदारता मैंने कहीं नहीं देखी। आपके इस वचन से ही मैं बहुत प्रसन्न हुआ। अब तो मैं कुछ लिए बिना ही जाना चाहता हूँ। ऐसी प्रतिज्ञा से मेरे हृदय को असीम संतोष हुआ है। अपनी इच्छित वस्तु को अब मुझे कहते भी नहीं बनता। मैं एक असमंजस का अनुभव कर रहा हूँ। यदि मैं जो दान में माँगूंगा उसे आप ना दे सकेंगे तो इस महान दानशीलता का यह निष्कलंक चाँद कलंकित हो जाएगा। मैं आपने इस कर्म से आपकी बदनामी नहीं कर सकता। ऐसा निष्कलंक

चाँद फिर धरती पर दूसरा और नहीं आयेगा। अतः मेरे इस कर्म को लेकर घोर निंदा करेंगे। खैर आप हमें विदा दें मैं खुशी से घर लौट जाऊँगा।

यह सुनकर कर्ण आश्चर्यचकित होकर बोल उठा - मैं आपको अद्भुत पाता हूँ। आप देवता हैं क्या! अथवा यक्ष हैं या भगवान की माया मुझे समझ में नहीं आता, आप मनुष्य हैं या कोई दूसरी योनि के प्राणी कहिये, कौन सी इच्छा है ? जितनी धरती चाहिए उतनी धरती दे सकता हूँ, जितनी धनराशि चाहिए उतनी धनराशि दे सकता हूँ। आप को जो वस्तु चाहिए वह क्षणभर में आपके कदमों में रख सकता हूँ या मुझे अपने साथ लेचलना चाहते हैं तो मैं आपकी सेवा के लिए भी प्रस्तुत हूँ। माँगकर ना माँगना बड़ी विचित्र बात है। राधेय क्या नहीं दे सकता ? हे प्रिय ! संकोच छोड़कर मनचाही वस्तु माँगिए ? मैं मना नहीं करूँगा।

कर्ण के ऐसे वचन सुनने के बाद ब्राह्मण कहा- मैं धन की भीख माँगने नहीं आया हूँ। मुझे ना तो धरती की चाह है और ना गो-धन की। यदि आप देना ही चाहते हैं तो कृपया मुझे अपना कवच- कुण्डल दे दें। कवच और कुण्डल का नाम सुनकर कर्ण चकित रह गये। ऐसा लगा की मानों बिजली छू गई। फिर कुछ देर गंभीर होकर उसने कहा- हे प्रिय ! मैंने आपको पहचान लिया। आप सुरपति इंद्र ही है। खैर, मैं धन्य हुआ। आखिर मेरी कीर्ति स्वर्ग के देवता को धरती पर खींच ही लाई। देवलोक भी पृथ्वी पर भीख माँगने आ गया।

समझा, तो यह और न कोई, आप, स्वयं सुरपति हैं,
देने को आये प्रसन्न हो तप को नयी प्रगती हैं।
धन्य हमारा सुयश आपको खींच मही पर लाया,
स्वर्ग भीख माँगने आज, सच ही, मिट्टी पर आया।

क्या कीजिए मैंने आपको देर से पहचाना। मैंने तो आपको दिन ब्राह्मण ही समझ कर माँगने को कहा था, अन्यथा सुरपति को कुछ भी देने की मेरी क्या सामर्थ्य है। जिन्हें केवल सुगंध ही प्यारी है उन्हें रक्त माँस का मानव क्या दे सकेगा ! स्वर्गवासी देवता भला मिट्टी से क्या दान लेंगे ! लेकिन जब आप सुरपति होकर माँगने आए हैं तो मैं आपको अवश्य दूँगा। शिवी, दधीचि की आत्माओं को दुख देकर अपने ऊपर कलंक नहीं लगा सकता। पर एक बात मैं आप से निवेदन करना चाहता हूँ कि आप केवल कवच-कुण्डल ही क्यों लेते हैं। इस तरह निष्प्राण बनकर मेरे

प्राणन ना छोड़िए। ऐसा आप क्यों करते हैं ! शायद इसलिए न कि अर्जुन विजयी हो?

एक ओर तो कृष्ण ही अर्जुन के रक्षक है तो दूसरी ओर आप मेरी देह से कवच और कुण्डल लेरहे हैं। भला सोचिए, इस प्रकार की लड़ाई क्या शूर की लड़ाई होगी ? मुझे इस तरह मार कर क्या अर्जुन अमर होगा ? देवताओं को भले ही यह लड़ाई अच्छी लगे, पर मनुष्यता को यह कभी नहीं अच्छी लग सकती। यह भी क्या कोई लड़ाई लड़ना है कि जिसमें शत्रु की हार पहले से तै हो। हे इंद्र, क्या भुजबल से जीता नहीं जा सकता उसे छल से जितना क्या उचित होगा? यदि अर्जुन कर्ण-विजय कहलाने के लिए आकुल ही है तो ऐसा क्यों नहीं करते कि मोम से कर्ण की मूर्ति बनाकर उसे मार गिरा दे। यही सबसे सरल उपाय है। किंतु यह सत्य है कि कर्ण को अर्जुन किसी भी तरह, कभी भी युद्ध में परास्त नहीं कर सकेगा। उसकी कर्ण विजय की अभिलाषा मन की मन में ही रह जाएगी। आज तक कवच-कुण्डल से सुरक्षित शरीर वाला वीर संसार में हुआ ही नहीं। मैं ही एक अपवाद था। आज वह भेद भी दूर करता हूँ। अच्छा ही हुआ कि आप मुझे समता पर लाने को आये। अब तो लोग यह नहीं कहेंगे कि कर्ण के पास ईश्वरीय शक्ति थी। कवच-कुण्डल के कारण कर्ण इतना वीर था।

'मैं ही था अपवाद, आज वह भी विभेद हरता हूँ,
कवच छोड़ अपना शरीर सबके समान करता हूँ।
अच्छा किया कि आप मुझे समतल पर लाने आये,
हर तनुत्र दैवीय; मनुज सामान्य बनाने आये।

दुनिया में हर व्यक्ति के जीवन में दुःख आता है तो सुख भी आता है, लेकिन हमारी जिंदगी तो सदा विपत्तियों से ही घिरी रही है। जन्म से संकटों का सामना करना पड़ा, सूत वंश में पलने के कारण घोर अपमान भी सहना पड़ा और दानशीलता के कारण आज फिर मेरे साथ भाग्य ने मेरे लिए बाधाएँ ही भेजा है। मैं इस रहस्य को समझ ही नहीं पाया कि भाग्य ने मेरे जीवन में बाधाएँ क्यों भेजा। यदि यह मान लिया जाया कि यह मेरे पूर्व जन्म के पापों का फल है तो फिर विधाता ने मुझे कवच और कुण्डल देकर वीर ही क्यों बनाया ? ईश्वर की माया जानी नहीं जाती। मैं सत्कार्य करता हूँ , किंतु फल संकट ही मिलता है। जाने मेरे निर्माण में प्रकृति का क्या लक्ष्य रहा !

जाने क्या मेरी रचना में था उद्देश्य प्रकृति का?
मुझे बना आगार शूरता का, करुणा का, धृति का,
देवोपम गुण सभी दान कर, जाने क्या करने को,
दिया भेज भू पर केवल बाधाओं से लड़ने को!

फिर भी, मेरा तो यह विश्वास है कि धरती पर मैं बेकार नहीं आया हूँ। संसार के सामने मेरा भी एक संदेश होगा। मुझे मनुष्य के जीवन विजय के लिए एक नया पाठ पढ़ाना होगा और वह पाठ यही है कि शूर-वीर जो चाहे कर सकते हैं। मेरा पाठ यही है शक्ति कुल और वंश में नहीं वीरों के भुजबल में होती है। चाहे सारा संसार ही दुश्मन हो जाय, धर्म और पुण्य भी बाधाएँ उपस्थित करें तो करें लेकिन, वीर पुरुष अपने पथ से विचलित नहीं होते। वीरों का बल आँधियों से ठेल कर भिड़ाता जाता है। हे इंद्र, मैं कुछ छल लेकर तो नहीं आया केवल वैसे लोगों का आदर्श बनने आया हूँ जो बाधाओं को झेलते हुए आगे बढ़ेंगे। मैं उन के साथ हूँ जो कुल, जाति का गौरव तोड़ेगे, जिन्हें नीच वंश जन्म कह कर संसार दिखारेगा और जो अपनी पीड़ा कहीं कह भी ना सकेंगे, पिता का नाम भी पूछने पर नहीं बता सकेंगे, संसार में जिनका कहीं कोई अपना नहीं होगा ऐसे ही लोगों का मैं आदर्श बनूँगा।

मैं उनका आदर्श जिन्हें कुल का गौरव ताडेगा,
'नीचवंशजन्मा' कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
जो समाज के विषम वह्नि में चारों ओर जलेंगे,
पग-पग पर झेलते हुए बाधा निःसीम चलेंगे।
'मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग; किंतु, पिता का नाम न बोल सकेंगे।

मेरा संदेश यही होगा कि परिश्रम और दुःख से घबराना धर्म नहीं है, सुख के लिए पाप का साथ देना उचित नहीं है। मुझे अपने भुजबल को छोड़कर किसी पर भी भरोसा नहीं रहा। हे देवराज इंद्र ! वह भी मैं आज दान देता हूँ। यह कवच और कुण्डल का ही दान नहीं है यह दान है अर्जुन के जीत का। या फिर कहूँ दुर्योधन के विजय का दान है और यही है महाभारत का परिणाम भी।

अब ऐसे महादान देने की कीर्ति क्या होगी। अर्जुन के समीप जाकर अब आप खुशी से कह सकेंगे कि पुत्र, मैं व्यर्थ नहीं आया हूँ। मैं तुम्हारे लिए कर्ण से विजय की

भीख माँग लाया हूँ । किंतु देवराज इंद्र, मेरा एक निवेदन आप स्वीकार करें जब स्वर्ग जाएँ तो ब्रह्मा से कृपया कह दें कि सारी धरती के लोग जिस महायुद्ध के भय से उद्वेलित हैं, वह महाभारत अभी हुआ भी नहीं है, लेकिन उस समर के दो महावीरों ने परस्पर समझौता कर लिया है । उसमें अर्जुन की हार हुई है और राधेय की विजय ।

इतना कहने के बाद कर्ण ने क्षण-भर में कृपाण से कवच कुण्डल काटकर इंद्र के हाथों में रख दिया । प्रकृति सिहर उठी । सूर्य यह दृश्य नहीं देख सके और बादलों के पीछे जा छिपे । सारी दिशाएँ साधु-साधु कह उठी । इंद्र अपना यह कर्म देखकर हतप्रभ रह गये । ग्लानि के मारे उनका मुख फीका पड़ गया ।

अपना कृत्य विचार, कर्ण का करतब देख निराला।
देवराज का मुखमण्डल पड़ गया ग्लानि से काला ॥

कवच कुण्डल लेकर वह स्तंभित से खड़े रह गये । सच है, पाप के बाद प्राणों का प्रवाह सहते नहीं बनता । इंद्र छल करने आये थे, किंतु त्याग के तेज में जलने लगे ? अंततः उनका सिर झुक गया और हृदय बोल उठा पुत्र ! तुमने सच कहा, मैं इंद्र ही हूँ । किंतु अपने देवत्व को छोड़ मैं तुम्हारे सम्मुख नतमस्तक हूँ । मैं अपने मुँह से कैसे क्षमा माँगू यह भी समझ नहीं पा रहा हूँ । हे कर्ण, तुम्हारी चरण धूलि ही मेरे लिए सर्वस्व है । मैं नहीं जानता था कि यह छल इतना हृदय को पीड़ा देने वाली होगी । मेरे मन का पाप मुझ पर वज्र बनकर गिरा रहा है । हे कर्ण, सच में मैं तुम्हारे आगे मलिन होता जा रहा हूँ । अपनी इस क्षुद्धता का ऐसा अनुभव मुझे अब तक नहीं हुआ था । दानवीर, तुम्हारी छाया भी मेरी देह से कहीं अधिक दिव्य है । तुम्हारे शीलता की गहराई का कुछ भी पता नहीं पा सका। मुझे किनारा भी नहीं दिखाई पढ़ रहा है । इस परीक्षा में तुम सफल रहे । सच यह है कि आज देवताओं की हार हुई और मनुष्य की विजय ।

कर्ण! सत्य ही, आज स्वयं को बड़ा क्षुद्र पाता हूँ ।
आह! खली थी कभी नहीं मुझको यों लघुता मेरी,
दानी! कहीं दिव्या है मुझसे आज छाँह भी तेरी ।

हाँ, पुत्र प्रेम के कारण ही मैंने यह छल किया । जानबूझकर मैं कवच-कुण्डल हर लेने को आया । ब्राह्मण का वेश धारण कर मैंने छल किया । अब छली और चोर कह कर अपना यह कलंकित मुख कैसे दिखाऊँगा । तुम तो वंदनीय हो, तुम्हारे तेज

के आगे देवत्व भी मलिन है । ऐसा लगता है कि तुम उज्ज्वल यश की पूंजीभूत प्रकाश हो । तुम्हें पाकर धरती फूली नहीं समाती।

कर्ण के प्रकाश के आगे इंद्र का व्यक्तित्व ठहर नहीं पाता अतएव इन्द्र कर्ण से अब विदा माँगते हैं। किंतु जाने के पहले वे कर्ण को एक वरदान देना चाहते हैं । कर्ण देकर तो धन्य हुए, अब कुछ लेना नहीं चाहते। वे चाहते हैं कि केवल धर्म में उनका अचल भाव बना रहे । इस पर इंद्र ने कहा- यह तो तुम्हारे लिए स्वाभाविक ही है । मैंने कवच और कुण्डल लेकर जो तुम्हें दुर्बल बना दिया है, उसकी पूर्ति मैं करना चाहता हूँ । तुम तो कुछ माँगोगे नहीं, लेकिन मैं बिना कुछ दिए नहीं जा सकता । मेरे मन का भार बिना कुछ दिए हल्का ना होगा । अतः मैं तुम्हें एक ऐसा अमोघ अस्त्र दे रहा हूँ जो स्वयं काल को भी खा सकता है । इसका वार कभी विफल नहीं जाएगा। लेकिन तुम इसका एक ही बार उपयोग कर सकोगे, उसके बाद यह शक्ति फिर मेरे पास लौट आयेगी । इसलिए देखो सोच कर ही इसका प्रयोग करना । जब कोई और युक्ति ना रहे तभी इस से काम लेना । इसी अमोघ अस्त्र को सौंपकर इंद्र चले गये । कर्ण भी अपना महादान देकर घर लौटे ।

5.5 बोध प्रश्न :

1) 'रश्मिरथी' खंडकाव्य के चतुर्थ सर्ग का सारांश अपने शब्दों में लिखिए ?
2) चतुर्थ सर्ग के आधार पर कर्ण का चरित्र चित्रण कीजिए ?
3) रश्मिरथी खंडकाव्य के चतुर्थ सर्ग की प्रमुख घटना का उल्लेख कीजिए ?
4) रश्मिरथी खंडकाव्य के चतुर्थ सर्ग की भाषा की स्वाभाविकता, सहजता पर अपने विचार प्रकट कीजिए ?
5) चतुर्थ सर्ग के आधार पर इन्द्र का चरित्र चित्रण कीजिए ?

5.6 संदर्भ सहित व्याख्या :

1) यह न स्वत्व का त्याग, दान तो जीवन का झरना है,
रखना उसको रोक मृत्यु के पहले ही मरना है।
किस पर करते कृपा वृक्ष यदि अपना फल देते हैं?
गिरने से उसको संभाल क्यों रोक नहीं लेते हैं?

संदर्भ:- प्रस्तुत पंक्तियाँ दान बल नामक कविता से ली गई है जिसके कवि रामधारीसिंह दिनकर है। दिनकर जी का जन्म सन् 1908 में बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में हुआ था। दिनकर जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ और वीर

रस के कवि के रूप में प्रसिद्ध है। राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं क्रांतिकारी विचारधारा आदि इनके साहित्य की विशेषताएँ है। 'उर्वशी' नामक काव्य के लिए

इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। रेणुका, हुँकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

व्याख्या:- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि दान के महत्व को समझते हैं। दान देकर यह कहना कि यह मेरा त्याग है, मैंने अपने स्वत्व का त्याग किया है, कहना बिल्कुल गलत है। दान में हम न तो अपने वस्तु का त्याग करते हैं और ना ही अपने अधिकार का त्याग करते हैं। दरअसल दान तो जीवन की स्वाभाविकता है। दान न देना अपने ही विकास को रोकना है अर्थात जीवन की प्रगति रुक जाती है। दान न देना मृत्यु के पहले ही मार जाना है। यदि वृक्ष फल देता है तो वह किसी पर कृपा करने के लिए नहीं देता है। यदि ऐसी बात है तो वे अपने फलों को अपने पास क्यों नहीं रोक लेते हैं ? वास्तविकता तो यह है कि ऋतु के बाद वृक्ष अगर फलों को अपने पास ही रोक कर रखेगा तो उसकी डालियों के रेशों में सड़न आने लगेगी। जिसके कारण वह वृक्ष नष्ट हो जाएगा। इस के विपरीत वह अपने फलों को दान करेगा तो वह स्वस्थ रहेगा और उसका विकास होगा। ठीक उसी प्रकार से मनुष्य का जीवन भी है। मनुष्य दान देकर ही अपने जीवन की उन्नति व विकास कर सकता है। दान करने से उसे डरना नहीं चाहिए और न ही दान दिये गये वस्तु के प्रति मोह नहीं दिखाना चाहिए। दान देना जीवन की स्वाभाविकता है।

विशेषता:- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि दान के महत्व के बारे में बताते हैं।

2) सरिता देती वारि कि पाकर उसे सुपूरित घन हो,
बरसे मेघ, भरे फिर सरिता, उदित नया जीवन हो।
आत्मदान के साथ जगज्जीवन का ऋजु नाता है,
जो देता जितना बदले में उतना ही पाता है।

संदर्भ:- प्रस्तुत पंक्तियाँ दान बल नामक कविता से ली गई है जिसके कवि रामधारीसिंह दिनकर है। दिनकर जी का जन्म सन् 1908 में बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में हुआ था। दिनकर जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ और वीर रस के कवि के रूप में प्रसिद्ध है। राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं क्रांतिकारी विचारधारा आदि इनके साहित्य की विशेषताएँ है। 'उर्वशी' नामक काव्य के लिए इन्हें ज्ञानपीठ

पुरस्कार प्राप्त हुआ। रेणुका, हुँकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

व्याख्या:- दान का महत्व इसलिए नहीं है कि इससे दूसरों को लाभ होता है, दान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इससे जीवना का विकास होता है । नदी का उदाहरण देकर कवि बताते हैं कि नदी बादल को पानी देकर वह अपने अधिकार का त्याग नहीं करती । वास्तव में इससे तो नदी का ही लाभ होता है । नदी बादल को पानी इसलिए देती है कि जब बादल बरसे तो फिर से नदी में नया पानी भर सके और वही पानी जीवन दायिनी होती है । इस बात का जीवन के साथ सीधा संबंध है । इसी तरह जो जितना दान देता है बदले में वह उतना ही पाता है । दान नहीं देने वाला अपने को ही धोखा देता है । जो दाना नहीं देता है उसका जीवन रिक्त रहा जाता है अर्थात उसके जीवन का विकास नहीं होता है।

विशेषता:- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि दान के महत्व को नदी के माध्यम से बताने का प्रयास करते हैं।

3) दान जगत का प्रकृत धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है,
एक रोज तो हमें स्वयं सब-कुछ देना पड़ता है।
बचते वही, समय पर जो सर्वस्व दान करते हैं,
ऋतु का ज्ञान नहीं जिनको वे देकर भी मरते हैं

संदर्भ:- प्रस्तुत पंक्तियाँ दान बल नामक कविता से ली गई है जिसके कवि रामधारीसिंह दिनकर है। दिनकर जी का जन्म सन् 1908 में बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में हुआ था। दिनकर जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ और वीर रस के कवि के रूप में प्रसिद्ध है। राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं क्रांतिकारी विचारधारा आदि इनके साहित्य की विशेषताएँ है। 'उर्वशी' नामक काव्य के लिए इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। रेणुका, हुँकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

व्याख्या:- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि दान करना मनुष्य का एक प्राकृतिक धर्म है, मानते हैं। क्योंकि हमारे जीवन का विकास दान से ही होता है। परन्तु मनुष्य अकारण ही दान करने से डरता है। उसे यह जानकारी होने के बाद भी कि एक दिन प्रत्येक मनुष्य को सब-कुछ छोड़कर जाना पड़ता है। जो मनुष्य इस सत्य को जानलेता है वह समय रहते ही अपना सब-कुछ दान कर अमर होता है। जो लोग

इस जीवन के सत्य को नहीं जान पाते हैं वे जीवित रहते ही मृतक के समान होते हैं । इसलिए मनुष्य को इस जगत के प्रकृत धर्म को निभाना चाहिए । तभी उसका विकास हो सकता है।

विशेषता: प्रस्तुत पंक्तियों में कवि मनुष्य के धर्म के बारे में बताते हुए उसे जीवन के सत्य से परिचय करते हैं ।

4) यह लीजिए कर्ण का जीवन और जीत कुरूपति की,
कनक-रचित निःश्रेणि अनूपम निज सुत की उन्नति की ।
हेतु पांडवों के भय का, परिणाम महाभारत का,
अंतिम मूल्य किसी दानी जीवन के दारुण व्रत का ।

संदर्भ:- प्रस्तुत पंक्तियाँ दान बल नामक कविता से ली गई है जिसके कवि रामधारीसिंह दिनकर है। दिनकर जी का जन्म सन् 1908 में बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में हुआ था। दिनकर जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ और वीर रस के कवि के रूप में प्रसिद्ध है। राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं क्रांतिकारी विचारधारा आदि इनके साहित्य की विशेषताएँ है। 'उर्वशी' नामक काव्य के लिए इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। रेणुका, हुँकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

व्याख्या:- कर्ण ने अपने कवच-कुण्डल को कृपण से काटकर इन्द्र के हाथों में दिया । दान देते समय कर्ण ने इन्द्र से कहा कि यह केवल कवच-कुण्डल का दान नहीं है, यह कर्ण के जीवन का भी दान है, यह दुर्योधन के जीत का दान है । क्यों कि दुर्योधन ने मेरे बल पर ही लड़ाई ठानी है और मेरे बल पर ही वे विजयी हो सकते थे । लेकिन अब मैं कवच-कुण्डल रहित हो ने के कारण उनके लिए विजय प्राप्त नहीं कर सकूँगा। दूसरी ओर, यह अर्जुन की उन्नति का, विजय का दान है। क्योंकि अब निर्बल कर्ण को अर्जुन आसानी से जीत सकेगा । जो पांडव मेरे इस शक्ति से भय

भीत थे अब वह नहीं रहेगा । इस तरह महाभारत के युद्ध का एक प्रकार से यह परिणाम ही प्रकट कर रहा है । अतः यह परिणाम कर्ण की दानशीलता के दारुण व्रत का परिचायक है ।

विशेषता:- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि कर्ण के दानशीलता की मार्मिकता से अवगत करते हैं ।

5) 'तृण-सा विवश डूबता, उगता, बहता, उतराता हूँ,

शील-सिंधु की गहराई का पता नहीं पाता हूँ।
घूम रही मन-ही-मन लेकिन, मिलता नहीं किनारा,
हुई परीक्षा पूर्ण, सत्य ही नर जीता सुर हारा।

संदर्भ:- प्रस्तुत पंक्तियाँ दान बल नामक कविता से ली गई है जिसके कवि रामधारीसिंह दिनकर है। दिनकर जी का जन्म सन् 1908 में बिहार के मुंगेर जिले के सिमरिया नामक गाँव में हुआ था। दिनकर जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ और वीर रस के कवि के रूप में प्रसिद्ध है। राष्ट्रीयता, देशभक्ति एवं क्रांतिकारी विचारधारा आदि इनके साहित्य की विशेषताएँ है। 'उर्वशी' नामक काव्य के लिए इन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। रेणुका, हुँकार, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

व्याख्या:- इन्द्र अपनी ग्लानि में कह ते हैं कि मैं नहीं जानता था की यह छल इतना हृदय को पीड़ा देने वाली होगी। मेरे मन का पाप मुझ पर वज्र बनकर गिरा रहा है। आज तक अपनी लघुता, अपनी क्षुद्रता का ऐसा अनुभव कभी नहीं हुआ था। कर्ण तुम्हारे देह की छाया भी मेरे शरीर से कही अधिक दिव्य है। हे कर्ण, सच में मैं तुम्हारे आगे मलिन होता जा रहा हूँ। मैं तुम्हारे शील-सिंधु में तिनके के समान बहता जा रहा हूँ। तुम्हारे शीलता की गहराई का कुछ भी पता नहीं पा सका। मुझे किनारा भी नहीं दिखाई पढ़ रहा है। इस परीक्षा में तुम सफल रहे। सच यह है कि आज देवताओं की हार हुई और मनुष्य की विजय।

विशेषता:- प्रस्तुत पंक्तियों में कवि इन्द्र के ग्लानि का तथा कर्ण के चरित्र की महत्त को प्रकट करते हैं।

-डॉ आनंदी

6. उर्वशी (तीसरा सर्ग)

'उर्वशी''दिनकर' का कामाध्यात्म संबंधी महाकाव्य है, जिसमें प्रेम या काम भाव को आध्यात्मिक भूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है। इसकी विषय वस्तु इन्द्रलोक की अप्सरा उर्वशी और इस लोक के राजा पुरूरवा की प्रेम कथा पर आधारित है। 'उर्वशी' यह रामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा रचित एक गीतिनाट्य है जो 1961 ई. में प्रकाशित हुआ था इसमें दिनकर जी ने उर्वशी और पुरूरवा के प्राचीन आख्यान को एक नए अर्थ से जोड़ने का प्रयास किया है, इस कृति के लिए दिनकर जी को 1972 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया था।

उर्वशी प्रेम और सौन्दर्य का काव्य है। प्रेम और सौन्दर्य की मूल धारा में जीवन दर्शन सम्बन्धी अन्य छोटी-छोटी धाराएँ आकर मिल जाती हैं। प्रेम और सुन्दरता का विधान कवि ने बहुत व्यापक धरातल पर किया है और प्रेम की छवियों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर पहचाना है।

दिनकर जी की भाषा में हमेशा एक प्रत्यक्षता और सादगी दिखी है, लेकिन उर्वशी में इन्होंने नयी कविता के शिल्प का सहारा लेते हुए प्रतीकों, बिम्बों और रूपकों का अत्यंत कुशलता से उपयोग किया है। 'दिनकर' जी ने अधिकतर प्रचलित और तुकांत छंदों का ही प्रयोग किया है। लेकिन कभी-कभार अतुकांत और मुक्त छंद के प्रयोग की ओर भी इनकी रुचि दिखायी देती है। युग-चारण और लोकप्रिय जनकवि की अपेक्षाओं के अनुरूप इनकी कविताओं का संरचना शिल्प अत्यंत सहज और सुकर है।

प्रस्तावना :

पुरूरवा और उर्वशी की कथा कई रूपों में मिलती है। उसकी व्याख्या भी कई प्रकार से की गयी है। राजा पुरूरवा सोमवंश के आदि पुत्र थे। इनकी राजधानी प्रयाग के पास प्रतिष्ठानपुर में थी। पुराणों में कहा गया है कि जब मनु और श्रद्धा को संतान प्राप्ति की इच्छा हुई तब उन्होंने वशिष्ठ मुनि से यज्ञ करवाया था। श्रद्धा की मनोकामना थी कि वे कन्या की माता बनें। मनु की इच्छा थी कि उन्हें पुत्र प्राप्त हो

। किन्तु इस यज्ञ से उन्हें कन्या की प्राप्ति हुई । मनु की निराशा से द्रवित होकर वशिष्ठ मुनि ने उसे पुत्र बना दिया । मनु के इस पुत्र का नाम सुद्दुम्न पड़ा । युवा होने के बाद एक बार आखेट करते हुए सुद्दुम्न किसी अभिशप्त वन में चले गए । जहाँ शाप वश वे युवा से युवती बन गए । उनका नाम 'इला' हो गया । इसी इला का प्रेम चंद्रमा के नवयुवक पुत्र बुद्ध से हो गया । इन्हीं से पुरूरवा की उत्पत्ति हुई थी । पुरूरवा को 'एल' भी कहते है । उनसे चलने वाले वंश का नाम चंद्र वंश है । उर्वशी के उत्पत्ति के विषय में दो अनुमान लगाए जाते हैं । पहला यह है कि अमृत मंथन के समय समुद्र से अप्सराओं का जन्म हुआ उसमें उर्वशी का भी जन्म हुआ था । दूसरा यह कि नारायण ऋषि की तपस्या में विघ्न डालने के कारण जब इन्द्र ने उनके पास अनेक अप्सराएँ भेजी थी तब ऋषि ने अपने ऊरु को ठोंक कर एक ऐसी नारी को उत्पन्न किया जो उन सभी अप्सराओं से अधिक रूपवती थी यही रूपवती 'उर्वशी' थी । उसका नाम उर्वशी इसलिए पड़ा क्योंकि वह ऊरु से जन्मी थी । उर्वशी के संबंध में अनेक कथाओं का उल्लेख किया जाता है । उनमें से ऋग्वेद में जो सूक्त बताए गए है उनमें यह विदित है कि उर्वशी पुरूरवा को छोड़कर चली जाती है और पुरूरवा उसके विरह में डूब जाता है । कुछ दिनों बाद जब उर्वशी पुरूरवा से मिलती हैतब वह यह बताती है कि वह गर्भवती है । फिर भी वह उसके साथ रहना स्वीकार नहीं करती है । इस संबंध में शतपथ ब्राह्मण और पुराणों में यह बताया गया है कि उर्वशी और पुरूरवा के छः पुत्र थे ।

वैदिक संस्कृति की पहली कथा उर्वशी और राजा पुरूरवा की बतायी जाती है । जिसका काल विद्वानों के मतानुसार 1600 ई. पु. माना गया है । वही दूसरी ओर साहित्य और पुराण में उर्वशी सौंदर्य की प्रति मूर्ति थी । स्वर्ग की इस अप्सरा की उत्पत्ति नारायण की जंघा से मानी जाती है । पद्म पुराण के अनुसार इनका जन्म कामदेव के ऊरु से हुआ था । श्रीमद भागवत के अनुसार यह स्वर्ग की सर्व सुंदरी अप्सरा थी । एक बार इंद्र की राजसभा में नाचते समय वह राजा पुरूरवा के प्रति क्षण भर के लिए आकृष्ट हो गयी । इस कारण उनके नृत्य का ताल बिगड़ गया । इस अपराध के कारण राजा इंद्र ने रुष्ट होकर उसे मृत्युलोक में रहने का अभिशाप दे

दिया । मृत्युलोक में उसने पुरूरवा को अपना पति चुना । जिसके लिए उसने तीन शर्तें रखी थी उसमें से पहली यह थी कि मैं तुम्हें निर्वस्त्र अवस्था में नहीं देखूँगी, दूसरी उर्वशी के इच्छा के प्रतिकूल समागम न करें और अंतिम यह कि उसके दो मेष स्थानांतरित कर दिए जाए तो वह उनसे संबंध विच्छेद कर स्वर्ग जाने के लिए स्वतंत्र हो जाएगी। पुरूरवा उर्वशी की सारी शर्तें मान लेता है।

उर्वशी और पुरूरवा बहुत समय तक पति पत्नी के रूप में साथ-साथ रहें । इनके संतानों में विद्वानों में मतभेद है कहीं पर छ पुत्र बताए जाते हैं कहीं पर नौ पुत्र उत्पन्न होने की कथा बताई जाती है। अधिक समय बीतने के पश्चात गंधर्वों को उर्वशी की अनुपस्थिति अप्रिय लगने लगी। गंधर्वों ने विश्वाबसु को उसके मेष चुराने के लिए भेज दिया था। उस समय पुरूरवा नग्नावस्था में थे। आहट पाकर वे उसी अवस्था में विश्वाबसु को पकड़ने के लिए दौड़े थे। अवसर का लाभ उठाकर गंधर्वों ने उसी समय प्रकाश कर दिया। जिससे उर्वशी पुरूरवा को नग्न अवस्था में देख लेती है । शर्तों के अनुसार उर्वशी श्राप से मुक्त हो जाती है और पुरूरवा को छोड़कर स्वर्ग लोक चली जाती है। महाकवि कालिदास के संस्कृत महाकाव्य विक्रमोर्वशीय नाटक में भी इसी प्रसंग को दिखाया है । आधुनिक हिन्दी साहित्य में रामधारी सिंह 'दिनकर' ने इसी कथा को अपनी काव्यकृति का आधार बनाया है। महाभारत की एक कथा के अनुसार एक बार जब अर्जुन इंद्र के पास अस्त्र विद्या की शिक्षा लेने गए तो उर्वशी उन्हें देखकर मुग्ध हो गई। अर्जुन ने उर्वशी को मातृ भाव से देखा। अतः उसकी इच्छा पूर्ति न करने के कारण उन्हें शापित होकर एक वर्ष तक पुरुषत्व से वंचित रहना पड़ा।

जैसा कि बताया जा चुका है कि उर्वशी स्वर्ग लोक की अप्सरा थी। एक बार वह अपनी सखियों के साथ भूलोक पर भ्रमण करने के लिए चली जाती है । वहाँ एक असुर दृष्टि उन पर पड़ जाती है और वह असुर उनका अपहरण कर लेता है । वह उन अप्सराओं को एक रथ में ले जा रहा होता है तब वे अप्सराएँ विलाप करने लगती हैं। तब उनका वह विलाप सुनकर राजा पुरूरवा निडर होकर उन्हें बचाने के

लिए आता है। वह निडर होकर असुर पर आक्रमण करता है और उस असुर का वध करता है।

उर्वशी विजेता पुरूरवा के प्रेम में पड़ जाती है और पुरूरवा उस सुंदर अप्सरा का प्रेमी बन जाता है। किन्तु कुछ दिनों बाद उर्वशी को स्वर्ग लोक लौटना पड़ा और पुरूरवा उसके लिए बेचैन रहने लगा। उसके समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए ? तब वह अपने परम मित्र राज विदूषक को अपनी व्यथा सुनाता है। एक दिन वह अपने उद्यान में बैठकर अपने मित्र को उर्वशी के संबंध में बताता है तभी उर्वशी उसके पीछे आकर खड़ी रहती है। परंतु वह दिखाई नहीं दे रही थी। तब वह पुरूरवा को अपने उपस्थित होने का ज्ञान कराया और दोनों परस्पर आलिंगन ले लिया। ठीक उसी समय स्वर्ग लोक से एक दूत आता है और उर्वशी को देवराज इन्द्र का संदेश देता है। उस संदेश में यह थ कि वह तत्काल स्वर्ग लोक पहुँचकर एक विशेष नृत्य नाटिका में भाग ले। तब न चाहते हुए भी उर्वशी को जाना पड़ा। किन्तु उसका नृत्य में बिल्कुल भी मन नहीं लग रहा था। अनजाने में ही वह पुरूरवा का नाम ले लेती है। नृत्य नाटिका के रचयिता भरत मुनि ने क्रोध में उसे श्राप दे दिया था – "तुमने मेरी नाटिका में चित नहीं रमाया। तुम भू-लोक जाकर वहाँ पुरूरवा के साथ मनुष्य की भाँति ही रहो।"उर्वशी पुरूरवा से प्रेम तो करती थी परंतु मृत्युलोक में नहीं रहना चाहती थी। इसलिए वह देवराज इन्द्र के सामने गिड़गिड़ाने लगी कि उसे श्राप-मुक्त कर दें। इन्द्र को भी अपनी प्रिय अप्सरा पर दया आती है तब वह उसे कहते हैं कि "उर्वशी तुम भू-लोक जाओ, किन्तु तुम अधिक दिन वहाँ नहीं रहोगी।" तब उर्वशी को पुरूरवा के पास जाना पड़ा। उसे उसके पास आने का आनंद तो था ही, साथ ही स्वर्ग लोक के सारे आनंद से वंचित होने का दुःख भी था।

पुरूरवा उसके लिए संपूर्ण भू-लेक तलाश लेता है। विक्षिप्त होकर वह कभी-कभी वन की लताओं को उर्वशी समझ कर आलिंगन देता है। जब वह वन में निकलता था तब उसे ओस की बूँदों में उर्वशी के पदचाप की ध्वनि सुनाई देती थी। जब आकाश स्वच्छ होता और चिड़ियाँ चहचहाती होती, तब उसे उर्वशी के हँसने

और गाने का भ्रम होता था। जब आकाश मेघाच्छन्न होता तब उसे यह लगता था कि उर्वशी यहीं कही छिपी हुई है और सहसा ही उसे मिल जाएगी किन्तु उसकी खोज व्यर्थ गयी, उर्वशी उसे प्राप्त न हो सकी। कई साल बीतने के बाद उर्वशी को उस पर दया आती है और वह उसके सामने प्रकट होती है। तब वह कहती है "तुम मुझे वर्ष के अंतिम दिनों में ही पा सकोगे।" इस प्रकार वर्ष में एक दिन ही वह पुरूरवा को प्राप्त हो पाती है, वर्ष के शेष दिनों में वह उसकी विरह-वेदना में जलता रहता है, उसे ढूँढ़ता रहता है लेकिन नहीं ढूँढ पाता है। इस प्रकार के प्रेम, सौंदर्य, लावण्य, मोहकता और भव्यता के प्रतीक का चित्रण कवि ने किया है।

उर्वशी (तीसरा सर्ग)

पुरूरवः! पुनरस्तं परेहि,
दुरापना वात इवाहमस्मि (ऋग्वेद)
अर्थात्- हे पुरूरवा! तुम अपने घर लौट जाओ
मैं वायु के समान दुष्प्राप्य हूँ।

(गंधमादन पर्वत पर पुरूरवा और उर्वशी का संवाद)

पुरूरवा

जब से हम तुम मिले, न जाने कितने अभिसारो[1] में
रजनी कर श्रृंगार सितासित[2] नभ में घूम चुकी है;
जानें, कितनी बार चंद्रमा को, बारी-बारी से,
अमा चुरा ले गयी और फिर ज्योत्सना ले आई है।

जब से हम-तुम मिले, रूप के अगम, फुल कानन में
अनिमिष[3] मेरी दृष्टि किसी विस्मय में डूब गयी है,
अर्थ नहीं सूझता मुझे अपनी ही विकल गिरा का;
शब्दों से बनती हैं जो मूर्तियाँ, तुम्हारे दृग से।
उठने वाले क्षीर-ज्वार में गल कर खो जाती हैं।

खड़ा सिहरता रहता मैं आनंद-विकल उस तरु-सा

[1]प्रेमिका से मिलने के लिए नायक का संकेत स्थान पर जाना।
[2]इसका अर्थ होता है सफेद और काला।
[3]स्थिर दृष्टि।

जिसकी डालों पर प्रसन्न गिलहरियाँ किलक रही हों,
या पत्तों में छिपी हुई कोयल कूजन करती हो।

उर्वशी

जब से हम तुम मिले, न जाने, क्या हो गया समय को,
लय होता जा रहा मरुद्गति से अतीत-गह्वर में।
किन्तु, हाय, जब तुम्हें देख मैं सुरपुर को लौटी थी,
यही काल अजगर-समान प्राणों पर बैठ गया था ।
उदित सूर्य नभ से जाने का नाम नहीं लेता था,
कल्प बिताये बिना न हटाती थीं वे काल-निशाएँ

कामद्रुम[4]-तल पड़ी तड़पती रही तप्त फूलों पर;
पर, तुम आए नहीं कभी छिप कर भी सुधि लेने को।
निष्ठुर बन निश्चिन्त भोगने बैठे रहे महल में
सुख प्रताप का, यश का,कलियों का, फूलों का।

मिले, अंत में, तब, जब ललना की मर्याद गँवाकर
स्वर्ग-लोक को छोड़ भूमि पर स्वयं चली मैं आयी।

पुरूरवा

चिर-कृतज्ञ हूँ इस कृपालुता के हित, किन्तु मिलन का,
इसे छोड़ कर और दूसरा कौन पंथ संभव था ?
उस दिन दुष्ट दनुज के कर से तुम्हें विमोचित करके
और छोड़ कर तुम्हें तुम्हारी सखियों के हाथों में
लौटा जब मैं राज-भवन को, लगा, देह ही केवल
रथ में बैठी हुई किसी विध गृह तक पहुँच गयी है;
छूट गए हैं प्राण उन्हीं उज्ज्वल मेघों के वन में,
जहाँ मिली थीं तुम क्षीरोदधि में लालिमा-लहर सी।

कई बार चाहा, सुरपति से जाकर स्वयं कहूँ मैं,

[4]पत्तों के समान हिलता काम भाव।

अब उर्वशी बिना यह जीवन भार हुआ जाता है,
बड़ी कृपा हो उसे आप यदि भूतल पर जाने दें ।

पर, मन ने टोका, क्षत्रिय भी भीख माँगते हैं क्या ?
और प्रेम क्या कभी प्राप्त होता है भिक्षाटन से ?
मिल भी गयी उर्वशी यदि तुझ को इंद्र की कृपा से,
उसका हृदय-कपाट कौन तेरे निमित्त खोलेगा ?
बाहर साँकल नहीं जिसे तू खोल हृदय पा जाये,
इस मन्दिर का द्वार सदा अन्तःपुर से खुलता है ।

और कभी यह भी सोचा है, जिस सुगंध से छक कर
विकल वायु बह रही मत्त होकर त्रिकाल-त्रिभुवन की,
उस दिगन्त-व्यापिनी गन्ध की अव्यय, अमर शिखा को
मर्त्य प्राण की किस निकुंज-वीथी में बाँध धरेगा ।

इसीलिए, असहाय तड़पता बैठा रहा महल में,
ले कर यह विश्वास, प्रीति मेरी यदि मृषा[5] नहीं है,
मेरे मन का दाह व्योम के नीचे नहीं रुकेगा,
जलद-पुंज को भेद, पहुँच कर पारिजात के वन में
वह अवश्य ही कर देगा सन्तप्त तुम्हारे मन को ।
और प्रीति जगने पर तुम वैकुण्ठ-लोक को तज कर
किसी रात, निश्चय, भूतल पर स्वयं चली आओगी ।

उर्वशी

सो तो मैं आ गयी, किन्तु, यह वैसा ही आना है,
अयस्कांत ले खींच अयस को जैसे निज बाँहों में ।
पर, इस आने में किंचित् भी स्वाद कहाँ उस सुख का,
जो सुख मिलता है उन मनस्विनी वामलोंचनाओं को
जिन्हें प्रेम से उद्वेलित विक्रमी पुरुष बलशाली
रण से लाते जीत या कि बल-सहित हरण करते हैं ।

---
[5]मृषा का अर्थ व्यर्थ होता है ।

नदियाँ आती स्वयं, ध्यान सागर, पर, कब देता है ?
बेला का सौभाग्य जिसे आलिंगन में भरने को
चिर-अतृप्त, उद्भ्रांत महोदधि लहराता रहता है।

वही धनी जो मानमयी प्रणयी के बाहु-वलय में
खिचीं नहीं, विक्रम-तरंग पर चढ़ी हुई आती है।
हरण किया क्यों नहीं, माँग लाने में यदि अपयश था ?
पुरूरवा
अवशमूल दोनों विकर्म हैं, हरण हो कि भिक्षाटन।
और हरण करता मैं किसका ? उस सौंदर्य-सुधा का
जो देवों की शान्ति, इन्द्र के दृग की शीतलता थी ?

नहीं बढ़ाया कभी हाथ पर के स्वाधीन मुकुट पर,
न तो किया संघर्ष कभी पर की वसुधा हरी को।
तब भी प्रतिष्ठानपुर वन्दित है सहस्त्र मुकुटों से,
और राज्य-सीमादिन-दिन विस्तृत होती जाती है।
इसी भांति, प्रत्येक सुयश, सुख, विजय, सिद्धि जीवन की
अनायास, स्वयमेव प्राप्त मुझको होती आई है।
यह सब उनकी कृपा, सृष्टि जिनकी निगूढ़ रचना है।
झुके हुए हम धनुष मात्र हैं, तनी हुई ज्या पर से
किसी और की इच्छाओं के बाण चला करते हैं।

मैं मनुष्य, कामना-वायु मेरे भीतर बहती है
कभी मन्द गति से प्राणों में सिहरन-पुलक जगा कर;
कभी डालियों को मरोड़ झंझा की दारुण गति से
मन का दीपक बुझा, बना कर तिमिराच्छन्न हृदय को।
किन्तु पुरुष क्या कभी मानता है तम के शासन को ?
फिर होता संघर्ष तिमिर में दीपक फिर जलाते हैं।

रंगों की आकुल तरंग जब हमको कस लेती है,
हम केवल डूबते नहीं ऊपर भी उतराते हैं
पुण्डरीक के सदृश मृत्ति-जल ही जिसका जीवन है,
पर, तब भी रहता अलिप्त जो सलिल और कर्दम से।

नहीं इतर इच्छाओं तक ही अनासक्ति सीमित है;
उसका किंचित स्पर्श प्रणय को भी पवित्र करता है।

उर्वशी

यह मैं क्या सुन रही ? देवताओं के जग से चल कर
फिर मैं क्या फंस गई किसी सुर के ही बाहू-वलय में ?
अंधकार की मैं प्रतिमा हूँ ? जब तक हृदय तुम्हारा
तिमिर-ग्रस्त है, तब तक ही मैं उस पर राज करूँगी ?
जलाओगे जिस दिन बुझे हुए दीपक को
मुझे त्याग दोगे प्रभात में रजनी की माला सी ?

वह विद्युन्मय स्पर्श तिमिर है, पाकर जिसे त्वचा की
नींद टूट जाती, रोमों में दीपक बल उठेते हैं ?
वह आलिंगन अन्धकार है, जिसमें बंध जाने पर
हम प्रकाश के महासिंधु में उतरने लगते हैं ?
और कहोगे तिमिर-शूल उस चुम्बन को भी जिससे
जड़ता की ग्रंथियाँ निखिल तन-मन खुल जाती हैं ?

यह भी कैसी द्विधा है ? देवता गन्धों के घेरे से
निकल नहीं मधुपूर्ण पुष्प का चुम्बन ले सकते हैं।
और देहधर्मी नर फूलों के शरीर को तज कर
ललचाता है दूर गन्ध के नभ में उड़ जाने को।

अनाशक्ति तुम कहो, किन्तु इस द्विधा-ग्रस्त मानव की
झाँकी तुम में देख मुझे, जाने क्यों, भय लगता है।

तन से मुझको कसे हुए अपने दृढ़ आलिंगन में,
मन से, किन्तु विषण दूर तुम कहाँ चले जाते हो ?
बरसा कर पियूष प्रेम का, आँखों से आँखों में
मुझे देखते हुए कहाँ तुम जाकर खो जाते हो ?
कभी-कभी लगता है, तुमसे जो कुछ भी कहती हूँ
आशय उसका नहीं, शब्द केवल मेरे सुनते हो।

क्षण में प्रेम अगाध, सिन्धु हो जैसे आलोड़न में
और पुनः वह शान्त, नहीं जब पत्ते भी हिलते हैं
अभी दृष्टि युग-युग के परिचय से उत्फुल्ल हरी सी
और अभी यह भाव, गोद में पड़ी हुई मैं जैसे
युवता नारी नहीं, प्रार्थना की कोई कविता हूँ।
शमित-वह्नि सुर की शीतलता चो अज्ञात नहीं है
छककर देता उसे नहीं पीने जो रस जीवन का,
न तो देवता-सदृश गंध-नभ में जीने देता है।

पुरूरवा

कौन है अंकुश, इसे मैं भी नहीं पहचानता हूँ।
पर, सरोवर के किनारे कंठ में जो जल रही है,
उस तृषा, उस वेदना को जानता हूँ।
आग है कोई, नहीं जो शांत होती;
और खुलकर खेलने से भी निरंतर भागती है।

रूप का रसमय निमंत्रण
या कि मेरे ही रुधिर की वह्नि
मुझको शान्ति से जीने न देती।
हर घड़ी कहती, उठे,
इस चंद्रमा को हाथ से धर कर निचोड़ो,
पान कर लो यह सुधा, मैं शांत हूँगी।
अब नहीं आगे कभी उद्भ्रांत हूँगी।

किन्तु रस के पात्र पर ज्यों ही लगता हूँ अधर को,
घूँट या दो घूँट पीते ही
न जाने, किस अतल से नाद यह आता,
"अभी तक भी न समझा ?
दृष्टि का जो पेय है, वह रक्त का भोजन नहीं है।
रूप की आराधन का मार्ग आलिंगन नहीं है।"

टूट गिरती हैं उमंगे,
बाहुओं का पाश हो जाता शिथिल है।
अप्रतिभ मैं फिर उसी दुर्गम जलधि में डूब जाता,
फिर वही उद्विग्न चिन्तन,
फिर वही पृच्छा चिरन्तन,
रूप की आराधना का मार्ग
आलिंगन नहीं तो और क्या है ?
स्नेह का सौंदर्य को उपहार
रस-चुम्बन नहीं तो और क्या है ?
रक्त की उत्तप्त लहरों की परिधि के पार
कोई सत्य हो तो,
चाहता हूँ,भेद उसका जान लूँ।
पन्थ हो सौंदर्य की आराधना का व्योम में यदि
शून्य की उस रेख को पहचान लूँ।
पर, जहाँ तक भी उड़ूँ, इस प्रश्न का उत्तर नहीं है।
मृत्ति महादाकाश में ठहरे कहाँ पर ? शून्य है सब।
और नीचे भी नहीं सन्तोष,
मिट्टी के हृदय से
दूर होता ही कभी अम्बर नहीं है।
इस व्यथा को झेलता
आकाश की निस्सीमता में

घूमता फिरता विकल, विभ्रांत
पर, कुछ भी न पाता।
प्रश्न को कढ़ता,
गगन की शून्यता में गूंजकर सब ओर
मेरे ही श्रवण में लौट आता।

और इतने में मही का गान फिर पड़ता सुनाई,
"हम वही जग हैं, जहाँ पर फूल खिलते हैं।
दूब है शय्या हमारे देवता की,
पुष्प के वे कुञ्ज मंदिर हैं
जहाँ शीतल, हरित, एकांत मडंप में प्रकृति के
कंटकित युवती-युवक स्वच्छंद मिलते हैं।"

"इन कपोलों की लड़ाई देखते हो ?
और अधरों की हँसी यह कुंद-सी, जूही-कली-सी ?
गौर चम्पक-यष्टि-सी यह देह श्लथ पुष्पभरण से,
स्वर्ण की प्रतिमा कला के स्वप्न-साँचे में ढली-सी ?"

"यह तुम्हारी कल्पना है, प्यार कर लो।
रुपसी नारी प्रकृति का चित्र है सबसे मनोहर,
ओ गगनचारी! यहाँ मधुमास छाया है।
भूमि पर उतारो,
कमल, कर्पूर, कुंकुम से, कुटज से
इस अलुत सौन्दर्य का श्रृगार कर लो।"

गीत आता है मही से ?
या कि मेरे ही रुधिर का राग
यह उठता गगन में ?
बुलबुलों-सी फूटने लगती मधुर स्मृतियाँ हृदय में;

याद आता है मंदिर उल्लास में फूला हुआ वन
याद आते हैं तरंगित अंग के रोमांच, कम्पन;
स्वर्णवर्णा वल्लरी में फूल से खिलते हुए मुख,
याद आता है निशा के ज्वार में उन्माद का सुख।
कामनाएँ प्राण को हिलकोरती हैं।
चुम्बनों के चिह्न जग पड़ते त्वचा में।
फिर किसी का स्पर्श पाने को तृषा चीत्कार करती।

मैं न रुक पाता कहीं,
फिर लौट आता हूँ पिपासित
शून्य से साकार सुषम के भुवन में
युद्ध से भागे हुए उस वेदना-विह्वल युवक-सा
जो कहीं रुकता नहीं,
बेचैन जा गिरता अकुंठित
तीर-सा सीधे प्रिया की गोद में
चूमता हूँ दूब को, जल को, प्रसूनों, पल्लवों को,
वल्लरी को बांह भर उर से लगाता हूँ;
बालकों-सा मैं तुम्हारे वक्ष में मुंह को छिपाकर
नींद की निस्तब्धता में डूब जाता हूँ।

नींद जल का स्त्रोत है, छाया सघन है,
नींद श्यामल मेघ है, शीतल पवन है।

किन्तु जग कर देखता हूँ,
कामनाएँ वर्तिका सी बल रही हैं
जिस तरह पहले पिपासा से विकल थीं
प्यास से आकुल अभी भी जल रही हैं।
रात भर, मानो, उन्हें दीपक-सदृश्य जलना पड़ा हो,
नींद में, मानो, किसी मरुदेश में चलना पड़ा हो।

....
चाहिए देवत्व,
पर, इस आग को धर दूँ कहाँ पर ?
कामनाओं को विसर्जित व्योम में कर दूँ कहाँ पर ?
वह्नि का बेचैन यह रसकोष, बोलो, कौन लेगा ?
आगे के बदले मुझे संतोष, बोलो, कौन देगा ?

फिर दिशाएँ मौन, फिर उत्तर नहीं है।
प्राण की चिर-संगिनी यह वह्नि,
इसको साथ लेकर
भूमि से आकाश तक चलते रहो।
मर्त्य नर का भाग्य !
जब तक प्रेम की धारा न मिलती,
आप अपनी आग में जलते रहो।

एक ही आशा, मरुस्थल की तपन में
ओ सजल कामम्बिनी! सर पर तुम्हारी छांह है।
एक ही सुख है, रस्थल से लगा हूँ,
ग्रीव के नीचे तुम्हारी बांह है।

इन प्रफुल्लित प्राण-पुष्पों में मुझे शाश्वत शरण दो,
गंध के इस लोक से बाहर न जाना चाहता हूँ।
मैं तुम्हारे रक्त के कान में समाकर
प्रार्थना के गीत गाना चाहता हूँ।

उर्वशी

स्वर्णदी, सत्य ही, वह जिसमें उर्मियाँ नहीं, खर ताप नहीं
देवता, शेष जिसके मन में कामना, द्वन्द्व, परिताप नहीं
पर, ओ, जीवन के चटुल वेग! तू होता क्यों इतना कातर ?
तू पुरुष तभी तक, गरज रहा जब तक भीतर यह वैश्वानर।

जब तक यह पावक[6] शेष, तभी तक सखा-मित्र त्रिभुवन तेरा,
चलता है भूतल छोड़ बादलों के ऊपर स्यन्दन तेरा।

तब तक यह पावक शेष, तभी तक सिंधु समादर करता है,
अपना समस्त मणि-रत्न-कोष चरणों पर लाकर धरता।
पथ नहीं रोकते सिंह, राह देती है सघन अरण्यानी,
तब तक ही सीस झुकाते हैं सामने प्रांशु पर्वत मानी।
सुरपति तब तक ही सावधान रहते बढ़ कर अपनाने को,
अप्सरा स्वर्ग से आती है अधरों का चुम्बन पाने को।

जब तक यह पावक शेष, तभी तक भाव द्वन्द्व के जगते हैं,
बारी-बारी से मही, स्वर्ग दोनों ही सुन्दर लगते हैं
मरघट की आती याद तभी तक फुल्ल प्रसूनों के वन में
सूने स्मशान को देख चमेली-जुही फूलती प्रसूनों के वन में,
शय्या की याद तभी तक देवालय में तुझे साताती है,
औ' शयन-कक्ष में मूर्ति देवता की मन में फिर जाती है।

किल्विष[7] के मल का लेश नहीं, यह शिखा शुभ्र पावक केवल,
जो किये जा रहा तुझे दग्ध कर क्षण-क्षण और अधिक उज्ज्वल।
जितना ही यह खर अनल-ज्वार शोणित में उमह उबलता है,
उतना ही यौवन-अगुरु[8] दीप्त कुछ और धधक कर जलता है।
मैं इसी अगुरु की ताप-तप्त, मधुमयी गन्ध पीने आयी,
नीर्जीव स्वर्ग को छोड़ भूमि की ज्वाला में जीने आयी।

बुझ जाए मृति का अनल, स्वर्गपुर का तू इतना ध्यान न कर;
जो तुझे दीप्ति से सजती है, उस ज्वाला का अपमान न कर।

---
[6]पावक अर्थात्- अग्नि
[7]किल्विष- का अर्थ अपराध बताया गया है।
[8]अगुरु- इसका अर्थ है ज्वलनशील पदार्थ।

तू नहीं जानता इसे, वस्तु जो इस ज्वाला में खिलती है,
सुर क्या, सुरेश के आलिंगन में भी न कभी वह मिलती है ।
यह विकल, व्यग्र, विह्वल प्रहर्ष सुर की सुन्दरी कहाँ पाये?
प्रज्वलित रक्त का मधुर स्पर्ष नभ की अप्सरी कहाँ पाये ?

वे रक्तहीन, शुचि, सौम्य पुष्प अम्बरपुर के शीतल सुन्दर,
दें उन्हें, किन्तु, क्या दान स्वप्न जिनके लोहित, सन्तप्त, प्रखर ?

यह तो नर ही है, एक साथ जो शीतल और ज्वलित भी है,
मन्दिर में साधक-व्रती, पुष्प-वन में कन्दर्प[9] ललित भी है ।

योगी अनन्त, चिन्मय, अरुप को रुपायित करने वाला,
भोगी ज्वलंत, रमणी-मुख पर चुम्बन अधीर धरने वाला;

मन की असीमता में निबद्ध नक्षत्र, पिण्ड, ग्रह, दिशाकाश,
तन में रसस्विनी की धारा, मिट्टी की मृदु, सोंधी सुवास;
मानव मानव ही नहीं, अमृत-नन्दन यह लेख अमर भी है,
वह एक साथ जल-अनल, मृत्ति-महदम्बर[10], क्षर-अक्षर भी है ।

तू मनुज नहीं, देवता, कान्ति से मुझे मंत्र-मोहित कर ले,
फिर मनुज-रूप धारा उठा गाढ़ अपने आलिंगन में भर ले ।
मैं दो विटपों के बीच मग्न नन्हीं लतिका सी सो जाऊँ,
छोटी तरंग-सी टूट उरस्थल के महीध्र पर खो जाऊँ ।
आ मेरे प्यारे तृषित ! श्रान्त ! अन्तःसर में मज्जित करके,
हर लूँगी मन की तपन चाँदनी, फूलों से सज्जित करके ।
रसमयी मेघमाला बन कर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी,
फूलों की छाँह-तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊँगी ।

---

[9]कन्दर्प- अर्थात् काम देवता ।
[10]मृति-महदम्बर – अर्थात् विराट आकाश यह होता है ।

पुरूरवा

हाँ समस्त आकाश दिखता भरा शांत सुषमा से
चमक रहा चन्द्रमा शुद्ध, शीतल, निष्पाप हृदय-सा
विस्मृतियाँ निस्तल समाधि से बाहर निकल रही हैं
लगता है, चंद्रिका आज सपने में घूम रही है।
और गगन पर जो असंख्य आग्नेय जीव बैठे हैं
लगते हैं धुन्धले अरण्य में हीरों के कूपों-से।
चंद्रभूति-निर्मित हिमकण ये चमक रहे शाद्वल में ?
या नभ के रन्ध्रों में सित पारावत बैठ गये हैं ?
कल्पद्रुम के कुसुम, या कि ये परियों की आँखें हैं ?

उर्वशी

कल्पद्रुम के कुसुम नहीं है ये, न तो नयन परियों के,
ये जो दीख रहे उजले-उजले से नील गगन में,
दीप्तिमान, सित, शुभ, श्मश्रुमय देवों के आनन हैं।
शमित वह्नि ये शीत-प्राण पीते सौंदर्य नयन से,
घ्राण मात्र लेते, न कुसुम का अंग कभी छूते हैं

पर, देखो तो, दिखा-दिखा दर्पण शशांक यह कैसे
सब के मन का भेद गुप्तचर-सा पढ़ता जाता है,
(भेद शैल-द्रुम का, निकुंज में छिपी निर्झरी का भी)
और सभी कैसे प्रसन्न अभ्यंतर खोल रहे हैं,
मानो चन्द्र-रूप धर प्राणों का पाहुन आया हो।
ऐसी क्या मोहिनी चंद्रमा के कर में होती है ?

पुरूरवा

महाशून्य के अंतर्गत में, उस अद्वैत-भवन में
जहाँ पहुंच दिक्काल एक हैं, कोई भेद नहीं है।
इस निरभ्र नीलांतरिक्ष की निर्झर मंजुषा में
सर्ग प्रलय के पुराव्रत्त जिसमें समग्र संचित हैं।

दूरागत इस सतत-संचरण-मय समीर के कर में
कथा आदि की जिसे अंत की श्रुति तक ले जाना है।

उर्वशी
रोम-रोम में वृक्ष, तरंगित, फेनिल हरियाली पर
चढ़ी हुई आकाश-ओर मैं कहाँ उड़ी जाती हूँ ?
पुरूरवा
देह डूबने चली अतल मन के अकूल सागर में
किरणें फेंक अरूप रूप को ऊपर खींच रहा है।
उर्वशी
करते नहीं स्पर्श क्यों पगतल मृत्ति और प्रस्तर का ?
सघन, उष्ण वह वायु कहाँ है ? हम इस समय कहाँ हैं ?
पुरूरवा
छूट गई धरती नीचे, आभा की झंकारो पर
चढ़े हुए हम देह छोड़ कर मन में पहुँच रहे हैं।
उर्वशी
फूलों-सा सम्पूर्ण भुवन सिर पर इस तरह, उठाए
यह पर्वत का श्रृंग मुदित हमको क्यों हेर रहा है ?
पुरूरवा
अयुत युगों से ये प्रसून यों ही खिलते आए हैं,
नित्य जोहते पंथ हमारे इसी महान मिलन का।
उर्वशी
जला जा रहा अर्थ सत्य का सपनों की ज्वाला में,
निराकार में आकारों की पृथ्वी डूब रही है।
पुरूरवा
शब्द नहीं है; यह गूँगे का स्वाद, अगोचर सुख है;
प्रणय-प्रज्वलित उर में जितनी झंकृतियाँ उठती हैं
कहकर भी उनको कह पाते कहाँ सिद्ध प्रेमी भी ?

भाषा रूपाश्रित, अरूप है यह तरंग प्राणों की।

उर्वशी

कौन पुरुष तुम ?

पुरूरवा

जो अनेक कल्पों के अंधियाले में
तुम्हें खोजता फिरा तैरकर बारम्बार मरण को
जन्मों के अनेक कुंजों, वीथियों, प्रर्थनाओं में,
पर, तुम मिली एक दिन सहसा जिसे शुभ्र-मेघों पर
एक पुष्प में अमित युगों के स्वप्नों की आभा-सी

उर्वशी

और कौन मैं ?

पुरूरवा

ठीक-ठीक यह नहीं बता सकता हूँ
इतना ही है ज्ञात, तुम्हारे आते ही अंतर का
द्वार स्वयं खुल गया और प्राणों का निभृत निकेतन
अकस्मात, भर गया स्वरित रंगों के कोलाहल से।

व्याख्या :

चिर-कृतज्ञ हूँ इस कृपालुता के हित,................इसे छोड़ कर और दूसरा कौन पन्थ संभव था ?

दिनकर जी राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के कवि हैं। उनकी कविता का स्वर ओजस्वी है लेकिन उर्वशी में उनकी कविता का मिजाज बदला हुआ है। उर्वशी में उन्होंने श्रृंगारिक अनुभूति को प्रधानता दी है। मानव जीवन में काम का व्यापक महत्व है। मनुष्य में काम का अनुभव शारीरिक ताप के रूप में होता है। मनुष्य का द्वंद इस बात को लेकर है कि वह उस ताप का अनुभव करता है और उससे परे भी जाना चाहता है।

उर्वशी पुरूरवा को जब छोड़कर चली गयी थी, तब पुरूरवा उसके वियोग में निरंतर भटकता रहा। तृतीय सर्ग में उर्वशी और पुरूरवा का पुनर्मिलन होता है।

पुरूरवा में उर्वशी को देखकर काम की चेतना जागृत होती है । पुरूरवा उर्वशी से अपना आत्मानुभव बयान करता है । पुरूरवा में उर्वशी को देखकर कामाग्नि प्रज्वलित होता है । वह ताप का अनुभव करता है । उर्वशी के सान्निध्य में उसमें उसके प्रति आकर्षण निर्माण होता है । वह उसे खूल कर नहीं बताना चाहता है क्योंकि यही मानव स्वभाव है कोई भी व्यक्ति तुरंत ही अपने मनोभावों को व्यक्त नहीं कर सकता है । रूप आकर्षण से निर्माण होने वाली काम की वेदना पुरूरवा में अशांति पैदा करती है । पुरुष में आग है नारी के रूप में शीतलता है । पुरुष की काम चेतना उसे निरंतर रूप के आस्वादन का निमंत्रण देती है । रूप के इस आस्वादन के बाद ही आग शांत होती है । विडम्बना यह है कि नारी के सहज स्पर्श के बाद भी यह आग ठंडी नहीं होती है । पुरुष का मन बेचैन और अतृप्त रहता है । यह काम का सामान्य मनोविज्ञान है । नारी के शरीर के रसपान के बाद भी पुरूरवा का द्वंद्व नहीं मिटता है । उसके अचेतन से यह आवाज निकलती है कि सौंदर्य पान करने की चीज नहीं है । वह देखने और आकर्षित होने के लिए है । सौंदर्यानुभूति आलिंगन में प्राप्त नहीं होती है । पुरूरवा में यह द्वंद्व इंद्रिय और इंद्रियातीत स्तर पर व्याप्त है । वह काम की पीड़ा को भी सहता है । उससे परे वायवीय और सूक्ष्म अनुभूति को प्राप्त करने की आकांक्षा भी रखता है ।

काम से मनुष्य लगातार जूझता रहता है । उसे पता नहीं चलता है कि काम का सच्चा आनंद किस तरह प्राप्त होता है । सच्चा आनंद ऐंद्रिय उपभोग में है अथवा इंद्रियातीत प्रेम में । सौंदर्य का अनुभव देखकर प्राप्त होता है अथवा उसे नचोड़कर प्राप्त किया जा सकता है । पुरूरवा में वेदना फिजिकल को लाँघकर मेटा फिजिकल हो जाने की है । इसलिए पुरूरवा में अकुलाहट है । सौंदर्य के रसपान के बाद भी उसे संतोष नहीं मिलता है । काम में सर्जनात्मक शक्ति होती है । वह मनुष्य में नित्य नए-नए आनंद की रचना करती है । मनुष्य में नई-नई कल्पना को जगाती है । काम का अनंत व्यापी प्रसार मनुष्य में संभव है । मनुष्यों में जो लोग पशुता से जितनी दूर हैं, वे काम की सूक्ष्मता का स्वाद उतना ही अधिक जानते है । इसे स्पष्ट करने के लिए कवि दिनकर जी ने उर्वशी में इन दोनों के माध्यम से समाज को दिखाने का बहुत ही सफल प्रयास किया है ।

-डॉ. पिराजीसेनकांबळे मनोहर

205HN21

M.A. DEGREE EXAMINATION

SECOND SEMESTER

HINDI

Paper V - **SPECIAL STUDY OF AN AUTHOR - DINAKAR**

Time Three Hours | Maximum 70 Marks

विशेष अध्ययन दिनकर

सूचना : किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर लिखिए ।

प्रथम प्रश्न अनिवार्य है ।

अन्य प्रश्नों में से किन्हीं चार के उत्तर दीजि ए । (4 x 7 1/2 = 30)

1. निम्ननलिखित अवतरणों की संदर्भ व्याख्या कीजिए । (4 x 10 = 40)

(a) (i) हृदय की वेदना बोली लहू बन लोचनी में
उठाने मृत्यु का घुँघट हमारा प्यार बोला ।

(अथवा)

(ii) तू बैक्षव - मद में इठभाती
परकी या - सी सैन चलाती
री ब्रिटन की दासी । किसको
इन आँखो पर है ललचाती ।

(b) (i) मुध्द की जवर - भीति से हो मुक्त
जब की होगी, सत्य ही, वसुघा सुघा से युक्त ।
शेय होगा सुष्ठु - विकसित मनुज का वह काल
जब नहीं होगी घर नर के रूघिर से लाल ।
शेय होग धर्म का आलोक वह निर्बन्य
मनुज जोड़ेगा मनुज से जब उचित सम्बन्ध ।

(अथवा)

(ii) राज प्रजा नहीं था कोई
और नहीं शसन भा
धर्म - निति का जन - जन के
मन - मन पर अनुशासन था

(c) (i) धर्म नहीं मैंने तुझसे जो वस्तु हरण कर ली हैं
छल से कर आघात तुझे जो निस्स हायता दी हैं
उसे दूर था कम करने की है मुझको अक्षिलाया
पर, स्वेच्छा से नहीं पूजने देगा तू यह आशा ।

(अथवा)

(ii) जो नर आत्मदान से अपना जीवन घट भरता है ।
वह मृत्यु के मुख में भी परकर न कभी महता है ।
जहाँ कहीं है ज्योति जगत में, जहाँ करी उजिथाल
वहाँ खरा है कोई अन्तिम मोल चूकोनेवाल

(d) (i) मैं मानवी नहीं, देवी हूँ देवों के आनन पर
सदा एक झिलमिल रहस्व आवरण पडा होता है ।
उसे हटावो मत, प्रकारा के पूरा खूल जाने से,
जीवन में जो भी कवित्व है, शेष नहीं रहता है ।

(अथवा)

(ii) मैं नहीं गगन की कता
तारकों में पुलकित फूलती हुई
मैं नहीं व्योमपूर की बाला
विधु की तनया, चन्द्रिका संग
पूर्णिमा - सिन्धु की परमोज्ज्वल आभा - तंरग
मैं नहीं किरण के तारों पर झूलती हूई भू पर उतरि ।

2. (a) दिनकर की कविता में व्यक्त क्रांतिकारी चेतना को स्पष्ट कीजिए ।

(अथवा)

(b) कुरूक्षेत्र में व्यक्त भुध्द और शांति संपधी कवि के विचारों को स्पष्ट कीजिए ।

3. (a) कुरूक्षेत्र के महाकाव्यत्व का निरूपण कीजिए ।

(अथवा)

(b) रश्मिरथी के वस्तुपक्ष पर विचार कीजिए ।

4. (a) उर्वशी में कामाध्यात्म का प्रतिपादन हुआ है - इस कथन पर विचार कीजिए ।

(अथवा)

(b) हुँकार का लवि इंद्र और द्विधा की श्यिति से मुक्ति हो क्रान्ति का आहवान करता है - इस तथ्य की सभीक्षा कीजिए ।

5. (a) किन्हीं दो पर टिप्पणी लिखिए ।

(i) कुरूक्षेत्र में वर्वित साम्यवादी विचारधारा

(ii) रश्मिरथी, में कर्ण का चरित्र चित्रण ।

(iii) ऊर्वशी का दार्शनिक पक्ष

(iv) हुँकार में व्यकत राष्ट्रीयता का स्वरूप ।

(अथवा)

(b) किन्हीं दो चरित्रों को चित्रण पर टिप्पमी लिखिए ।

(i) भीष्म ।

(ii) शीकृष्ण ।

(iii) पुरूखा

(iv) युधिष्ठर ।

205 MA HIN

ORIGINALITY REPORT

6%	4%	0%	2%
SIMILARITY INDEX	INTERNET SOURCES	PUBLICATIONS	STUDENT PAPERS

PRIMARY SOURCES

1	www.worldwidejournals.com Internet Source	2%
2	anucde.info Internet Source	1%
3	amkresourceinfo.com Internet Source	1%
4	Submitted to University of Mumbai Student Paper	<1%
5	Submitted to The University of the South Pacific Student Paper	<1%
6	Submitted to Rhodes College Student Paper	<1%
7	Submitted to North-Eastern Hill University, Shillong Student Paper	<1%
8	Gautam, Raj Bahadur. "Manjur Aehtesham Ke Katha Sahitya Me Samajik Sadbhav: Ek Adhyayan", Maharaja Sayajirao University of Baroda (India), 2023 Publication	<1%
9	Submitted to Podar International School Student Paper	<1%
10	in.booksc.xyz Internet Source	<1%

11	More, Minakshi . "raajee seth ka samagr saahity: ek anusheelan", Maharaja Sayajirao University of Baroda (India), 2020 Publication	<1 %
12	oldrol.lbp.world Internet Source	<1 %
13	assets.vmou.ac.in Internet Source	<1 %
14	Submitted to Mahatma Gandhi Central University, Motihari, Bihar Student Paper	<1 %
15	Submitted to NPS International School Student Paper	<1 %
16	dn790008.ca.archive.org Internet Source	<1 %
17	www.andhrauniversity.edu.in Internet Source	<1 %
18	Submitted to University of Delhi Student Paper	<1 %
19	Submitted to New International School of Thailand Student Paper	<1 %
20	Submitted to Symbiosis International School Student Paper	<1 %
21	ia801806.us.archive.org Internet Source	<1 %
22	Submitted to Lovely Professional University Student Paper	<1 %
23	librarykvfw.files.wordpress.com Internet Source	<1 %
24	Submitted to Oberoi International School Student Paper	

		<1%
25	Submitted to Odisha State Open University Student Paper	<1%
26	Submitted to Trinity College Dublin Student Paper	<1%
27	Submitted to G.D. Goenka World School Student Paper	<1%
28	Submitted to Pacific University Student Paper	<1%
29	Dandekar, Sukhada Ajit. "Upashastriya Vidha Thumri: Ek Loktatvik Adhyayan", Maharaja Sayajirao University of Baroda (India), 2022 Publication	<1%
30	indianrailways.gov.in Internet Source	<1%
31	www.uou.ac.in Internet Source	<1%

Exclude quotes	Off	Exclude matches	< 14 words
Exclude bibliography	Off		

205 MA HIN

GRADEMARK REPORT

FINAL GRADE

/0

GENERAL COMMENTS

PAGE 1

PAGE 2

PAGE 3

PAGE 4

PAGE 5

PAGE 6

PAGE 7

PAGE 8

PAGE 9

PAGE 10

PAGE 11

PAGE 12

PAGE 13

PAGE 14

PAGE 15

PAGE 16

PAGE 17

PAGE 18

PAGE 19

PAGE 20

PAGE 21

PAGE 22

PAGE 23

PAGE 24

PAGE 25

PAGE 26

PAGE 27

PAGE 28

PAGE 29

PAGE 30

PAGE 31

PAGE 32

PAGE 33

PAGE 34

PAGE 35

PAGE 36

PAGE 37

PAGE 38

PAGE 39

PAGE 40

PAGE 41

PAGE 42

PAGE 43

PAGE 44

PAGE 45

PAGE 46

PAGE 47

PAGE 48

PAGE 49

PAGE 50

PAGE 51

PAGE 52

PAGE 53

PAGE 54

PAGE 55

PAGE 56

PAGE 57

PAGE 58

PAGE 59

PAGE 60

PAGE 61

PAGE 62

PAGE 63

PAGE 64

PAGE 65

PAGE 66

PAGE 67

PAGE 68

PAGE 69

PAGE 70

PAGE 71

PAGE 72

PAGE 73

PAGE 74

PAGE 75

PAGE 76

PAGE 77

PAGE 78

PAGE 79

PAGE 80

PAGE 81

PAGE 82

PAGE 83

PAGE 84

PAGE 85

PAGE 86

PAGE 87

PAGE 88

PAGE 89

PAGE 90

PAGE 91

PAGE 92

PAGE 93

PAGE 94

PAGE 95

PAGE 96

PAGE 97

PAGE 98

PAGE 99

PAGE 100

PAGE 101

PAGE 102

PAGE 103

PAGE 104

PAGE 105

PAGE 106

PAGE 107

PAGE 108

PAGE 109

PAGE 110

PAGE 111

PAGE 112

PAGE 113

PAGE 114

PAGE 115

PAGE 116

PAGE 117

PAGE 118

PAGE 119

PAGE 120

PAGE 121

PAGE 122

PAGE 123

PAGE 124

PAGE 125

PAGE 126

PAGE 127

PAGE 128

PAGE 129

PAGE 130

PAGE 131

PAGE 132

PAGE 133